Fortnightly per copy Rs. 12/-

ओ३म्

18th July 2024

आर्य जीवन

ఆర్య జీవన్

संस्कृति संरक्षण व सामाजिक परिवर्तन का संकल्प

హింందీ-తెలుగు ద్విభాషా పక్ష పత్రిక

Website : http://www.aryasabhaapts.org

Narendra Bhavan Phone No. : 040 24760030

Date of Publication 2nd and 17th of every Month, Date of Posting 3rd and 18th of every Month

महात्मा मुन्शीराम जी

आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वान् पं. चमूपति जी ने आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के इतिहास में महात्मा जी का जो प्रारम्भिक जीवन वृत्तान्त दिया है, वह संक्षिप्त होता हुआ भी इतना पूरा और सुन्दर है कि हम उसके पूर्वार्द्ध को उद्धृत करना महात्मा जी के जीवन-परिचय के लिए पर्याप्त समझते हैं ।

''महात्मा मुन्शीराम का जन्म १८५६ ई. में जालन्धर जिले के तलवन नाम के कस्बे में हुआ । ये एक क्षत्रिय कुल के थे, जिनमें भक्ति और निर्भीकता की परम्परा चली आती थी । इनके पिता लाला नानकचन्द ने १८५७ के विद्रोह में सरकार की सेवा की थी । उसके पारितोषिक रूप में उन्हें कोतवाल का पद प्राप्त हुआ था । उनके जीवन का अधिक समय पश्चिमोत्तर (संयुक्त) प्रान्त में बीता । वे कोतवाल के मिष से बनारस, मिर्जापुर, बलिया, बरेली, बदायूं आदि स्थानों में ज्यादा रहे । मन्शीराम उनकी सन्तान में सबसे छोटा था, इसलिए इससे घर में सबसे अधिक लाड़-चाव किया जाता था ।

मुन्शीराम की प्रारम्भिक शिक्षा पहले तो पण्डितों और मास्टरों के द्वारा घर पर और फिर नियमित रूप से एक हिन्दी स्कूल में हुई । तुलसीकृत रामायण का पाठ लाला नानकचन्द बड़े चाव से किया करते थे । मुन्शीराम ने इस ग्रन्थ के कई स्थल कण्ठस्थ कर लिए । बड़े होकर भी ये तुलसी के दोहों और चौपाइयों का उच्चारण मजे ले-लेकर करते थे । ऐन्ट्रेन्स की शिक्षा के लिए बनारस के स्कूल में भर्ती हुए । १८६४ में परीक्षा दी । इनका पास होना निश्चित था परन्तु एक विषय का पत्र प्रकट हो गया । उसकी परीक्षा फिर हुई और ये उसमें सम्मिलित न हो सके । ये अपने पूर्व से नियत समय विभाग के अनुसार तलवन पहुंच गए । पहिले वर्ष के अध्ययन के भरोसे ये दूसरे वर्ष पुस्तकों की उपेक्षा किए रहे । विद्यालय जाना ही बन्द कर दिया । उपन्यास तथा नाटक पढ़ने की चाट तभी से पड़ी । यह उपेक्षावृत्ति यहां तक बढ़ी कि इस वर्ष परीक्षा में बैठे ही नहीं । आखिर अगले वर्ष अर्थात् १८६६ में ऐन्ट्रेन्स पास की ।

''जिन दिनों मुन्शीराम इन परीक्षाओं की तैयारी के लिए काशी में निवास करते थे, इनके पिता बलिया में थे । इस प्रकार ये स्वतन्त्र थे । कुश्ती, गदका तथा लाठी का अभ्यास इन्होंने इस स्वतन्त्रता की अवस्था में किया । शरीर बलिष्ठ था । निर्बल लड़कों को गुण्डों

से बचाने में बल का खूब सदुपयोग हुआ। परन्तु उपन्यासों के अध्ययन और अनुचित संगति ने मदिरापान तथा हुक्के की लत सी पैदा कर दी। काशी के घाटों पर ये दे देवियों को 'राक्षसों' के हाथों से बचा लाए। आर्य साहित्य का अभ्यास होता तो इनके अपने कथनानुसार ये राखी-बन्धे भाई बन जाते।

१८७८ में मुन्शीराम का विवाह हो गया। लाला देवराज जी की बहिन शिवदेवी उनकी धर्मपत्नी थी। यह देवी पुराने ढंग की सरल प्रकृति की सती-साध्वी गृहिणी थी। ऐसी गृहिणियां आजकल कम मिलती हैं। एक तो उस समय उनकी आयु छोटी थी। दूसरे, लाला मुन्शीराम पर उस समय पाश्चात्यता सवार थी। वे एक सरल आर्य गृहिणी की महत्ता को नहीं समझ सकते थे। सती का जौहर उन पर खुला तो उस समय जब वे मदिरा से उन्मत्त होकर घर लौटे, किसी सहायक की सहायता से छत पर पहुंचे और वहां जाते ही कै कर दी। पति-परायणा शिवदेवी ने इस बीभत्स अवस्था में भी उनसे घृणा के स्थान में प्रेम का व्यवहार किया। उनके वस्त्र बदलवाए, उन्हें कुल्ला कराया और सुला कर आधी रात गए तक पतिदेव के सारे शरीर को दबाती रही। वे सो गए और वह जाग तथा भूखी रह कर उनकी सेवा मं तत्पर रही। उन्होंने भूखा रहने का कारण पूछा तो सरल स्वभाव से बोली-पतिदेव से पूर्व भोजन कैसे करती ? उस रात दम्पति ने मिल कर उपवास किया। आर्य विवाह केवल कपड़ों की नहीं, हृदयों की गांठ होती है-इसका अनुभव मुन्शीराम को इस रात हुआ।

शिवदेवी की पति-भक्ति का दूसरा उज्ज्वल प्रमाण उस दिन मिला, जब इसी सुरा-पान ही के व्यसन के उन्हें सैकड़ों रुपयों का ऋणी बना दिया। वे रुपये की चिन्ता में चूर बैठे थे कि अर्धांगिणी ने अपने हाथों के कड़े उतार कर दे दिए और कहा-इन्हें बेच कर ऋण चुका दो।

शराब पीने वाले देवियों पर कैसे चोर अत्याचार करते हैं, इसका एक उदाहरण इनके एक हम-प्याला मित्र ही कि बैठक में उस मित्र के अपने हाथों उपस्थित हो गया।

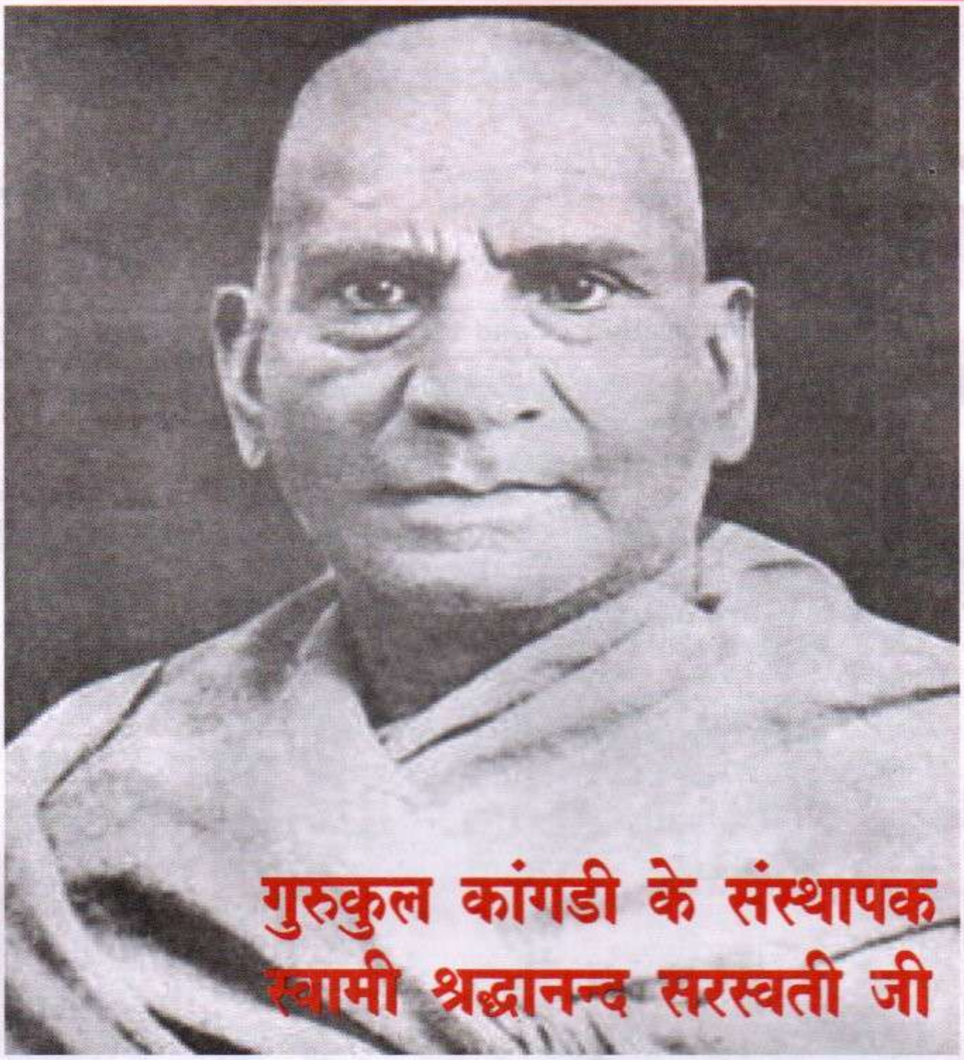

यह देखते ही उन्हें सुरापान से घृणा हो गई। मूर्ति-पूजा से विमुख हो जाने का कारण भी एक ऐसी ही घटना हुई। पुजारी ने पैर छू रही एक महिला का हाथ पकड़ लिया और वह चिल्ला उठी-इस दृश्य ने मुन्शीराम तता उनके साथी को मन्दिरों से उपरत कर दिया। इससे पूर्व काशी के मन्दिरों में रेवा की रानी की उपस्थिति के कारण अन्य दर्शनार्थियों पर शिवजी के दर्शन का द्वार निरुद्ध पाकर ये सोचने लगे थे कि क्या परमेश्वर बी राजा और रंक में बेद करता है ? इस प्रकार हिन्दू धर्म में इन्हें अनास्था हो गई, और एक कैथोलिक पादरी के साथ बप्तिस्मा का समय भी निश्चित कर लिया। परन्तु जब पादरी के घर गए तो वहां भी ऐसा ही दुराचार होता दिखाई दिया। उनकी दृष्टि एकाएक उस घिनौने दृश्य पर जा पड़ी और इन्होंने निश्चय किया कि सब धर्म सदाचार के शत्रु हैं।

इधर बरेली में अपने पिताजी के साथ ऋषि दयानन्द के व्याख्यानों में उपस्थित होने का सौभाग्य प्राप्त हो गया। ऋषि काशी पधारे थे तो इनकी माता ने इस भ्रम से कि एक जादूगर आया है, जो हिन्दुओं का धर्म हर लेता है, इन्हें तथा इनके भाई को घर पर रोके रखा था। पर अब तो स्वयं पिता उस जादूगर की माया में फंस गए थे। ऋषि के एक दिन के शास्त्रार्थ में ला. मुन्शीराम उपस्थित थे। ऋषि के स्थान पर जाकर उनका शंका-समाधान सुनने का शुभ अवसर भी इन्हें उपलब्ध हो गया। ये सब गठनाएं चुपके-चुपके किसी विचित्र भविष्य की तैयारी करा रही थीं। मुन्शीराम रिंद रह कर भी महात्मा बनने के परोक्ष संस्कार उपलब्ध कर रहा था। इन संस्कारों का परिपाक समय चाहता था जो प्रतिकूल परिस्थितियों में अपने आप प्राप्त होता जा रहा था।

एफ.ए. के पहले वर्ष की परीक्षा तो मुन्शीराम ने पास कर ही ली थी परन्तु दूसरे वर्ष की परीक्षा एक बार बनारस से और दूसरी बार इलाहाबाद से दी और दोनों बार असफल हुए। दूसरी बार इन्होंने तैयारी भी अच्छी की थी परन्तु रोगी होने के कारण

एक विषय में ८ अंकों की कमी रही, इसलिए ये अनुत्तीर्ण रहे ।

पुत्र को इस प्रकार उच्च शिक्षा पाने में असमर्थ देखकर इनके पिता ने इन्हें बरेली का स्थानापन्न नायब तहसीलदार को रसद की कीमत न मिली । इस पर इन्होंने अपने आदमियों को कर्नल के देखते-देखते लौटा लिया । कर्नल को साफ कह दिया कि मूल्य के बिना रसद नहीं मिलेगी । डिप्टी कलक्टर ने क्षमा मांगने को कहा परन्तु ये नहीं माने और पीछे चाहे इन्हें निर्दोष निश्चित कर आरोप हटा लिया तो भी इनका जी इस अपमान की चाकरी से खट्‌ हो गया और अब ये वकालत की परीक्षा के लिए तैयार होने लगे ।

१८८३ में इन्होंने मुख्यतारी की परीक्षा पास की और मुकदमें लेने आरम्भ कर दिए । इस परीक्षा में एक वर्ष में ५ उपस्थितियों की कमी के कारण और दूसरे वर्ष तैयारी पूरी न होने के कारण ये रह गए । १८८६ में वकालत की पहली परीक्षा दी । इसमें दो अंकों की कमी के कारण अनुत्तीर्ण ही रहते परन्तु यूनिवर्सिटी के रजिस्ट्रार लार्पैण्ट महाशय ने घूस लेकर कई विद्यार्थियों को पास कर दिया । उस समय पंजाब यूनिवर्सिटी की विचित्र परिस्थिति थी । विशेष कर परीक्षा सम्बन्धी अराजकता उस समय बहुत थी इस सम्बन्ध में लार्पैण्ट साहब बहुत प्रसिद्ध थे । लार्पैण्टी ग्रेजुएटों के सम्बन्ध में कई गाथाएं प्रसिद्ध है । परन्तु हमारा उनसे क्या मतलब । मुन्शीराम ने उन्हें अखबारों द्वारा सारी पोल खोल देने की धमकी दी । लार्पैण्ट ने डर के मारे इन्हें पास कर दिया । दूसरी परीक्षा दिसम्बर १८८६ में थी । उसके परिणाम में गड़बड़ रही । सैनेट ने केवल एक विद्यार्थी पास किया । आखिर जनवरी १८८८ में दूसरी बार इस परीक्षा में बैठकर पास हो गए । परीक्षाओं के इन अनुभवों ने पिछले संस्कारों को और भी दृढ़ कर दिया । शिक्षा का सच्चा मानदण्ड परीक्षा नहीं है । इसकी वर्तमान पद्धति में न आकस्मिक आपत्तियों के ही प्रतिकार का कोई स्थान है न विद्यार्थियों की विविध योग्यताओं के स्वतन्त्र विकास

गुरुकुल कांगडी

के लिए ही कोई अवसर है । महात्मा मुन्शीराम की इस सम्मति का परिणाम गुरुकुल की वर्तमान परीक्षा प्रणाली है । महात्मा मुन्शीराम के व्यक्तित्व के निर्माण में यूनिवर्सिटी की शिक्षा तथा परीक्षाएं असफल नहीं । इनका महान् जीवन कुछ और शक्तियों की कृति था । ये स्वभावतः उन्हीं को अधिक महत्व देते थे ।

मुख्तारी की परीक्षा पास कर इन्होंने वकालत का काम आरम्भ कर ही दिया था । वकालत की शिक्षा के लिए लाहौर जाना होता था । वहां ये आर्य समाज तथा ब्रह्म समाज दोनों के अधिवेशनों में सम्मिलित होते थे । पुनर्जन्म के विषय पर ये ऋषि का शास्त्रार्थ देख चुके थे । ब्रह्म समाज इस सिद्धान्त के विरुद्ध था । इस पर इन्होंने दोनों पक्षों के साहित्य का अनुशीलन कर निश्चय किया कि आर्य समाज का मत ठीक है । सत्यार्थ प्रकाश का अध्ययन इसी निमित्त से किया । बस फिर क्या ? ये झट आर्य समाज के सदस्य बन गए । ला. साईदास अपने पक्ष की इस जीत पर बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने भविष्यवाणी की कि आज एक नई शक्ति का प्रवेश आर्य समाज में हुआ है । देखें, इसका परिणाम अच्छा होता है या बुरा ? ला. देवराज ने जालन्धर समाज का प्रधान पद इनके लिए रिक्त कर दिया और स्वयं मन्त्री बन गए ।

मुन्शीराम जी का मांसाहार का त्याग भी सत्यार्थ प्रकाश के अध्ययन का फल था । आर्य समाज की सभासदी ने मुन्शीराम के अध्ययन को एक निश्चित दिशा दे दी । अब ये अधिक समय आर्य साहित्य के स्वाध्याय में लगे रहने लगे । ऋषि-कृत ग्रन्थों का पाठ कर वेद-वेदांग के स्वाध्याय में प्रवृत्ति हुई । जालन्धर समाज में इन्होंने धर्मघट तथा रद्दी-कण्ड की प्रथा जारी कर दी और शहर की गलियों में दुतारा लेकर संकीर्तन द्वारा धर्म का प्रचार करने लगे । सनातनी पण्डितों के मुकाबले में जब लाहौर से कोई पण्डित न आया तो जबानी व्याख्यानों तथा सास्त्रार्थों का काम मुन्शीराम ही को करना पड़ा ।

उधर वकालत चल रही थी और उसमें यथासम्भव सत्यपरायणता का प्रयत्न किया जा रहा था । इससे रुपए की दृष्टि से हानि होती थी । इधर प्रचार कार्य की धुन उन्हें वादी-प्रतिवादी का नहीं आर्य समाज का वकील बनाती जा रही थी । एक मुकदमा इन्हें मिला ही इसलिए कि आर्य समाज में दिए गए इनके व्याख्यान का प्रभाव एक वादी पर बहुत पड़ा । उसने पुराने अनुभवी वकीलों को छोड़कर इन्हीं को पसन्द किया और इन्होंने उसे विजय दिला दी । पर ये लाभ अपवाद रूप थे । साधारणतया वकालत और प्रचार इन दोनों कार्यों का एक सा चलना कठिन था ।

धार्मिक कट्टरता ने इन्हें घोर पारिवारिक विरोध का ही सामना कराया । पिताजी पहले तो रुष्ट हुए परन्तु पीछे उनके अपने

-शेष पृ. २३ पर

प्राणायाम
(प्राणमयकोश)

अभी तक स्थूलशरीर, अंग-प्रत्यंग व इन्द्रियों का मार्जन अन्दर-बाहर से कर आये। इन्द्रियों की वृत्ति सूक्ष्म भी होती है, जो उससे भी किसी सूक्ष्म शक्ति से निरुद्ध की जा सकती है। वह शक्ति प्राण हैं, इसलिए वृत्तियों का निरोध प्राणायाम से ही किया जा सकता है। स्वामी दयानन्द ने प्राणायाम के लिए यह मन्त्र निर्दिष्ट किया है-

ओं भूः। ओं भुवः। ओं स्वः। ओं महः।
ओं जनः। ओं तपः। ओं सत्यम्॥

सांध्ययोग-विधि में प्राणायाम मन्त्र की विशेषताएँ-

१) मार्जन मन्त्र में दिये प्रभु के गुणवाचक नामों से, मेरु दण्ड के जिन केन्द्रों, चक्रों या उप-नियन्त्रण कक्षों की ओर इंगित किया है, इस मन्त्र में दिये प्रभु-गुण नाम के साथ उन्हीं सात चक्रों पर क्रमशः प्राणायाम क्रिया करनी है।

२) प्राणायाम द्वारा प्रत्येक चक्र या उप-नियन्त्रण कक्ष से नियन्त्रित सभी अंग-प्रत्यंग व इन्द्रियों की सूक्ष्म आन्तरिक वृत्ति एवं लिप्तता हटाना तथा प्राणायाम द्वारा प्राप्त प्रभुशक्ति से ध्यान कर इन्हें सुसंस्कार की ओर प्रेरित करना है। महर्षि पतञ्जलि ने योग की परिभाषा करते समय भी यह कहा है-

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः॥ -यो. १।२

अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है।

यम-नियम के व्रत-पालन एवं मार्जन की शुद्धि के बाद जब आसन सध जाता है तब प्राणायाम ही चित्त की वृत्तियों का निरोध करता है, इसीलिए योग की साधना का मुख्य सोपान एवं साधना का आरम्भ प्राणायाम को ही कहा गया है।

३) दिव्य द्रष्टा दयानन्द ने इस मन्त्र का नाम प्राणायाम मन्त्र इसीलिए दिया है, क्योंकि इससे इन्द्रियाँ व मन को वश में करने की प्राणशक्ति प्राप्त होती है। इसे न्यून-से-न्यून तीन बार व अधिक-से-अधिक इक्कीस बार तक करने का आदेश किया है।

न्यून-से-न्यून तीन बार प्राणायाम का आशय है तीन प्रकार की भावनाओं से चित्तवृत्ति का निरोध करना। ये सम्भावित भावनाएँ इस प्रकार हैं-

१) पहले प्राणायाम से सातों चक्र व चक्र से नियन्त्रित अंग-प्रसंग व इन्द्रियों, अर्थात् सारे शरीर की वृत्तियों का निरोध कर शुद्ध करने की पहली भावना है।

२) दूसरे प्राणायाम में मुमुक्षु की साधना में प्रभुशक्ति-प्राप्ति की याचना का प्रतीक ज्योति प्रज्वलित करना, दूसरी भावना है।

३) तीसरे प्राणायाम में प्रभुशक्ति रूपी ज्ञान-ज्योति-प्राप्ति से स्वयं आभावान् प्रतीत होने की भावना है।

मन्त्र में दिये प्रभु-गुण के सात नामों से सात चक्र इंगित हैं। उपर्युक्त तीन प्रकार की भावनाओं में से एक-एक भावना के साथ सातों चक्रों पर एक-एक प्राणायाम करना है। सात प्राणायामों की तीन शृंखला, अर्थात् ७×३=२१ प्राणायामों का विधान है तदर्थ-अधिक-से-अधिक इक्कीस बार करने का आदेश है।

अगर समयाभाव से कभी तीन प्राणायाम ही करना चाहें तो तीन में से प्रत्येक प्राणायाम में, उपर्युक्त एक-एक भावना से, सातों चक्रों पर पहुँचने की क्रिया भी ध्यान में की जा सकती है।

इन्हीं तीन भावनाओं में से प्रत्येक के सात प्राणायामों की एक-एक शृंखला कहकर, आगे तीन शृंखलाओं की विधि वर्णित है।

विधि समझने से पहले प्राणायाम के कुछ नियम समझने आवश्यक हैं, जो इस प्रकार हैं-

१) प्राणायाम आरम्भ करने से पहले अत्यावश्यक है कि नासिका के दोनों सूर्य व चन्द्र स्वर चल रहे हों। अगर कोई स्वर बन्द है तो उसी तरफ़ की कांख में, दूसरे तरफ़ के हाथ की मुट्ठी को जोर से दबाकर उसी तरफ़ झुक जावें और दूसरे स्वर से जोर-जोर से श्वास-प्रश्वास करें। इस प्रकार बन्द स्वर चलने लगेगा।

२) भृकुटि को त्रिवेणी भी कहा गया है। इडा, पिंगला व सुषुम्णा की त्रिवेणी का संगम स्थान भी आज्ञा चक्र ही है जो भृकुटि के ही पीछे मेरुदण्ड में माना गया है। हमारा ध्यान इस समय भृकुटि में है। यहीं से प्राणायाम का आरम्भ है। तीनों शक्तियों अर्थात् इडा, पिंगला, सुषुम्णा का संगम स्थान भृकुटि पर जब दोनों स्वर भी शक्ति खीन्च रहे हों तभी सभी शक्तियों के समावेश से प्राणायाम बहुत लाभप्रद होता है।

३) श्वास तो नासिका से फेफड़ों में जाता है, परन्तु ध्यान त्रिवेणी से मेरुदण्ड के चक्रों पर ले-जाने के लिए, भावना से, प्राण का मार्ग, नासिका से भृकुटि, शिर से होकर पीछे मेरुदण्ड में ले जाने को बताया है। इस प्रकार एक-एक चक्र पर होते हुए क्रमशः सहस्रार से मूलाधार चक्र तक एक-एक चक्र पर होते हुए क्रमशः

४) श्वास से प्राणवायु खीन्च कर, प्रश्वास से दूषित वायु फेफड़ों से बाहर निकालने की शारीरिक प्रक्रिया है। इसको प्राणायाम करते समय भावना से यह ध्यान करना है कि ओ३म् की प्राणशक्ति खीन्चकर आन्तरिक वृत्ति, लिप्तता एवं विकार रूपी कल्मष को बाहर निकाल रहे हैं, तभी मन्त्र में सात बार ओ३म् के साथ उसकी शक्ति के नाम भी क्रमशः चक्रों को वैसी शक्ति पहुँचाने हेतु जोड़े गये हैं। मार्जन-विधि में ऐसी ही क्रिया स्थूल स्वच्छता हेतु कर आए हैं। अब सूक्ष्म-आन्तरिक कल्मष निकालकर निर्विकार होना है।

प्राणायाम की विधि

प्राणायाम प्रकरण में वर्णित, प्राणायाम के प्रकार का क्रमांक २ "आभ्यन्तरवृत्ति" प्राणायाम करेंगे। श्वास अन्दर लेना- "पूरक", अन्दर रोकना- "आभ्यन्तर-कुम्भक", उस चक्र पर क्रिया करनी और बाहर निकालना- "रेचक"। बाहर न रोककर, बाह्य कुम्भक न कर तुरन्त अन्दर लेना। यह एक प्राणायाम हुआ। इस प्रकार मन्त्र में दिए प्रभु गुणानुसार बताए प्रत्येक चक्र पर क्रमशः एक-एक प्राणायाम करते सात आभ्यन्तर वृत्ति प्राणायाम करने हैं।

ईश्वर सर्वव्यापक जगत् नियन्ता

-राज सिंह भल्ला

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविर शुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यद धाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ -ईशो. ८४०/८

सारे विश्व का आत्मा, सब भूत प्राणियों का मूलाधार, परम मौलिक सत्य और उपासकों से प्राप्य पद वह परमेश्वर परि-सव और से-सर्वत्र, अगात्-प्राप्त है। सर्वत्र विद्यमान है । वह दीप्तिमान है । काया रहित, व्रण रहित है और नस नाड़ियों से रहित है। अर्थात् परम् सूक्ष्म है वह परम् शुद्ध है । पाप से विन्धा हुआ नहीं है । सर्वथा निर्दोष है। भगवनान् स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीनों शरीरों से रहित है। वह सर्वज्ञ है। मन की जानने वाला है। सर्वत्र प्रकट है । और स्वतन्त्र सत्ता है। उस स्वयं भू परम पुरुष ने निरन्तर रहने वाले वर्षों के लिए ठीक ठीक वायु आदि पदार्थों को रचा। भगवान ने सभी पदार्थों और लोक-लोकान्तरों को जैसे चाहिए वैसे रचे । यथा योग्य परिमाण में, क्रम में, नियम में और देशादि में कल्पित किए।

ईश्वर सर्वव्यापक जगत् नियन्ता

ईशा वास्यमिदं सर्व यत्किंञ्च जगत्यां जगत्। जेन त्येक्तेन मुञ्जीथा मागृधः कस्यास्वि द्धनम्। -ईशो. /१/

यह जो दिखाई देने वाला तीनों लोकों में जगत् है-सारा ब्रह्माण्ड है उस सारे में परमात्मा अपनी शक्ति से विद्यमान है। उसके नियम नियन्त्रण में यह सब संसार है। वही सारे विश्व में बसी मूल सत्ता के आश्रित है। वह सर्व समर्थ, सर्व शक्तिमान् भगवान् सारे संसार का स्वामी है तथा संचालक है। सब पदार्थ उसी के हैं। इस भावनामय त्याग से हे मानव तू पदार्थों को भोग, सब भोग्य पदार्थ परमात्मा की देन जान । तू मत ललचा, वस्तुओं के संग्रह-संचय की लालसा मत कर, तू विचार कर जरा देख तो सही यह पदार्थ तो भगवान् के हैं, धन उसी का है लालच मत कर । यह धन तो कभी किसी के साथ नहीं गया और आगे भी किसी के साथ नहीं जाएगा। यह धन तो यहीं पड़ा रह जाएगा क्योंकि ये सब पदार्थ उसी परमेश्वर के हैं अन्य किसी के नहीं। ऐसी विचार बुद्धि से संग्रह की प्रवृत्ति को संयम में रखना चाहिए। ईश्वर को सर्वव्यापक और सब का स्वामी और जगत् नियन्ता मान ।

ईश्वर अखण्ड अचल इन्द्रियातीत है ।

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्। तद्धवतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥ -ईशो. /४/

अखिल विश्व में बसा हुआ उपास्य देव अचल है-वह स्वरूप से अचल है । एक है अखण्ड है । अद्वितीय है । वह अपने स्वभाविक संकल्प बल से मानव मन से भी अधिक वेगवान् है। प्रभु के स्वभाव की इच्छा अतुल वेगवती है। इस परमेश्वर को नेत्र आदि देव नहीं पहुंच सके, उसे पा नहीं सके, वह इन्द्रियों से आगे गया हुआ है। व्यापक है-विद्यमान है। वह प्रभु इन्द्रियातीत है। दौड़ते हुए अन्यों को-वायु, विद्युत आदि वेगवान शक्तिओं को भी-वह भगवान लांघ जाता है। परन्तु स्वरूप से कूटस्थ है। उसमें-सर्व शक्तिमान् भगवान् के नियत नियम में, जीव कर्मोको धारण करता है। उसकी नियम नियति में जन्म, कर्म फल की व्यवस्था चलती रहती है। आकाश में ज जाए, ठहरे, जन्म जन्मान्तर को पाए वह मातरिश्वा जीवात्मा है ।

ईश्वर अचल इन्द्रियातीत है

तदेजति तन्नैजति तद् दूरेतद्वनितके । तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः । -ईशो./५/

वह परमेश्वर तत्व हिलता है-अलौकिक क्रियावान् है, वह अकम्प है-अपने स्वरूप में सदा स्थिर एक रस है । यह दूर है-आज्ञानियों के लिए दूर है-ढूंढने के लिए इधर उधर जाना पड़ता है । इन्द्रियों से ग्रहण नहीं किया जा सकता। यह अत्यन्त समीप है-विश्व आत्मा है । आत्मा से ग्रहण किया जाता है। वह परमेश्वर हमें दिखाई देने वाले जगत् के भीतर है वह अपनी सत्ता से जगत् में विद्यमान् है, भीतर भी है और बाहर भी ओत-प्रोत है। वह परमेश्वर अलौकिकी स्वभाविकी क्रिया से युक्त है । वह स्वरूप से निश्चल है । उसमें देश काल कृत अन्तर नहीं है । केवल अज्ञान कृत अन्तर है वह परमात्मा आत्मा-द्वारा जाना जाता है। वह स्वसत्ता भाव से सर्वव्यापक है ।

परमात्मा निराकार है

अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् । महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति । -कठो. १/२:२२/-

उस परमात्मा का शरीर नहीं अर्थात् न तो स्थूल शरीर है और न सूक्ष्म शरीर तथापि वह परमात्मा प्रत्येक शरीर में रहता है। यह कार्य करता हुआ जगत् के अन्दर रहता है किन्तु फिर भी न काम करता हुआ पाया जाता है। परमात्मा की महानता की, बड़े पन की कोई सीमा नहीं है। वह सबसे बड़ा है। संसार की कोई वस्तु ऐसी नहीं जो उसके बाहर हो वह प्रत्येक के बाहर भीतर मौजूद है । हमारे भीतर उसकी विद्यमानता के कारण हम उसकी दृष्टि से बच नहीं सकते और क्योंकि वह हर जगह मौजूद है अतःहम उसके राज्य से भाग कर भी कहीं नहीं जा सकते । जहां जाएंगे वहां व्यापक होने से वह पहले मौजूद रहता है । जब तक हमें उसके अस्तित्व का ज्ञान नहीं है तब तक हम पाप कर सकते हैं। जब उसका ज्ञान हो जाता है तो पाप करने का साहस नहीं रहता। पाप करने की इच्छा नहीं होती। जीव स्वभाव से भययुक्त है। जब उसके

मन में पाप का विचार आता है तो तुरन्त अन्दर से भय, लज्जा और शंका पैदा हो जाती है। ऐसी अवस्था में मनुष्य पाप करने से बच जाया करता है। जब व्यक्ति पाप नहीं करेगा तो उसे शोक और भय, लज्जा किस प्रकार हो सकती है।

(सारे जगत् का स्वामी) तीनों कालों में रहने वाला ईश्वर आत्मा में रहता है।

अंगुष्टमात्रःपुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति। ईशानों भूत भव्यस्य न ततो विजुगुत्सते एवद्वैतत्। -कढ़ो-१/४/१२

अंगुष्ठ मात्र अर्थात् अनन्त आत्माओं में साक्षी रूप में रहने वाला पुरुष परमात्मा अपने मध्य अर्थात् स्वरूप में रहता है। वह भूत भविष्यत् का ईश्वर है। उससे-उसे जान कर मनुष्य शंका रहित हो जाता है। फिर सन्देह नहीं करता यह वही परम पुरुष-परमात्मा है। यहां अंगुष्ठ से तात्पर्य अंगस्थ है। विराट पुरुष के सभी लोक लोकान्तर अंग है। वह अनन्त महिमा युक्त भगवान साक्षी रूप से सारे चराचर जगत् मे रहता है। वास्तव में परम पुरुष स्व-स्वरूप में ही कूटस्थ हैं। वहीतीनों कालों का ईश्वर है। उसके दर्शन से जाप सिमरन तथा ध्यान से सारे संशय समाप्त हो जाते हैं।

प्रकाश स्वरूप त्रिकालिक ईश्वर

अगुंष्टमात्र पुरुषों ज्योतिरिवाघूमकः। ईशानों भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः एतद्वै तत्॥ -कठो. १/४/१३

अंग मात्र में रहने वाला परम पुरुष ज्योति की भांति प्रकाशमान है। निर्धूम ज्योतिवत् प्रदीप्त है। वह प्रभु भूत भविष्यत् का ईश्वर है। वह ही आज वर्तमान में ईश्वर है और वह ही कल था तथा आगे ईश्वर रहेगा। उसकी सत्ता त्रिकाल में सर्वोपरि विराजमान है। यह वही ईश्वर है जिसकी जिज्ञासा साधक करते हैं।

सर्व व्यापक ब्रह्म

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं-रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥ -कठो. १/५/६

जिस प्रकार प्रत्येक पदार्थ के भीतर एक ही अग्नि मौजूद है और जिस प्रकार की वह वस्तु है उसी प्रकार की दिखाई देती है। क्योंकि अग्नि का अपना कोई आकार नहीं प्रत्येक आकार में जो रूप दिखाई पड़ता है वह अग्नि के भीतर होने के कारण है। उसके अन्दर अग्नि होने का प्रमाण देता है। अर्थात् आकार से रहित अग्नि प्रत्येक आकार को प्रकाशित करने वाली है। प्रत्येक पदार्थ में व्यापक होने वाला परमात्मा जिससे रहित कोई वस्तु नहीं जो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म पदार्थ में विद्यमान है। संयोग वस्तु से असंयोग वस्तु और आकाश सूक्ष्म है। अतः प्रत्येक संयोग वस्तु में आकाश विद्यमान हैं कोई संयोग वस्तु नहीं जिसमें आकाश न हो-जिसमें आकाश है यह संयोग वस्तु है। असंयोग वस्तु नहीं। परमात्मा असंयोग वस्तु और आकाश से भी अति सूक्ष्म है इस कारण वह सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु अर्थात् गुण के भीतर भी विद्यमान है। जिस प्रकार परमाणु में आकाश नहीं रह सकता परन्तु उसके गुण विद्यमान रहते हैं और जां गुण हो वहां पर परमात्मा विद्यमान होगा यह आवश्यक नहीं कि जहां आकाश हो वहीं परमात्मा हो आकाश के बिना परमात्मा सूक्ष्तम होने से हो सकता है। परमात्मा ऐसे परमाणुओं में भी जिनमें आकाश नहीं रह सकता विद्यमान है और बाहर भी है। परमात्मा यदि प्रत्येक वस्तु के भीतर ही होता तो वस्तुएं परमात्मा से बड़ी होती क्योंकि छोटी वस्तु ही बड़ी वस्तु के भीतर रह सकती है। किन्तु वह परमात्मा बाहर भी है। वह सबके भीतर और बाहर व्यापक है।

सर्वव्यापक ब्रह्म

बायुर्णथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं-रूपं प्रतिरूपो बभूव। एकस्तथा सर्वभूतानतरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥ -कठो. १/५/१०

प्रत्येक संयुक्त वस्तु में वायु प्रवेश करके उसके आकार की मालूम होती है क्योंकि वायु का अपना कोई आकार नहीं वह जिस प्रकार की वस्तु में रहती है वैसा ही उसका आकार होता है। यदि मकान आयताकार है तो उस में वायु भी आयताकार ही होगी यदि मकान वर्गाकार हैतो उसमें रहने वाली वायु भी वर्गाकार ही होगी जैसे वायु प्रत्येक वस्तु को साथ उसी आकार वाली मालूम होती है। आत्मा परमात्मा की यही दशा है। वह जिस वस्तु में रहते हैं उसी की शक्ल में रहते हैं क्योंकि उनकी अपनी कोई शक्ल नहीं है यदि वस्तु के भीतर ही होते तो उसी आकार वाला कह सकते थे परन्तु वह हवा की भांति प्रत्येक वस्तु के बाहर भी है। इस प्रकार परमात्मा भी इस जगत् के भीतर और बाहर होने से जगत् के आकार वाला नहीं कहला सकता। वह परमात्मा सर्वव्यापक है।

ईश्वर अल्पित है

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्नलिप्यते चाक्षुषैर्वाह्यदोषैः। एकस्तथा सर्वभूतानतरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः॥ -कठो. १/५/११

जिस प्रकार सूर्य जगत् की आंख अर्थात् देखने का कारण है परन्तु आंखो का सहायक होने पर भीजो बीमारी आदि दोष आंख में होते हैं वहसूर्य में नहीं आते। इसी प्रकार परमात्मा सारे जगत् में व्यापक है परन्तु संसार के दुखों से लिप्त नहीं होता। जो संसार में दोष हैं वे स्थूल है और स्थूल वस्तु सूक्ष्म में प्रवेश नहीं कर सकती बाहर रह सकती है। जब प्रवेश ही न कर सके तो हानि कर कैसे हो सकती है। परमात्मा प्रत्यक अच्छी बुरी वस्तु में व्यापक है परन्तु क्योंकि सूक्ष्म वस्तु में स्थूल के गुण नहीं जा सकते और स्थूल में सूक्ष्म गुण जा सकते हैं। जहां गुणी जाएगा वहां गुण जाएगा। कोई गुण अपने गुणी को छोड़ कर नहीं जा सकता यह नियम है कि स्थूल द्रव्य सूक्ष्म में प्रविष्ट नहीं हो सकते अतः उसके गुण भी वहां नहीं जा सकते। पानी में आग प्रवेश करके पानी को गरम कर सकती है परन्तु आग में पानी प्रवेश

करके आग को ठण्डा नहीं कर सकता। इसी प्रकार पृथिवी आदि स्थूल वस्तु को गुण परमात्मा में नहीं आ सकते और न स्थूल पदार्थ का प्रभाव सूक्ष्म पर होता है। इसलिए सम्पूर्ण जगत् के भीतर रहता हुआ भी परमात्मा जगत् के दु:खों से युक्त नहीं हो सकता वह अलिप्त है।

परमात्मा व्यापक और अलिंग है

अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिंग एव च। यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति॥ -कठो. १/६/८

परमात्मा प्रकृति से सूक्ष्म है। और प्रत्येक परमाणु में व्यापक है कोई वस्तु ऐसी नहीं जिसके भीतर बाहर परमात्मा विद्यमान न हो। वह परमात्मा सबसे सूक्ष्म है और अलिंग है। इस कारण उसका कोई चिह्न इन्द्रियों से अनुभव नहीं हो सकता। केवल एक वही परमात्मा है जिसके जानने से जीवात्मा मुक्ति प्राप्त कर लेता है। और अमृत मृत्यु रहित अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

ईश्वर सर्वज्ञ और जगत् नियन्ता

एष ब्रह्मैष इन्द्रः। एष प्रजापतिः। एते सर्वे देवा इमानि च पञ्च महाभूतानि, पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतीषीत्येतानीमानि च क्षुद्रमिश्राणीव बीचानीतराणि चेतराणि चाण्डजानिच जरायुजानि च स्वेदजानि, चोद्भिज्जानि चाश्वाः गावः, पुरुषाः हिस्तनो, यक्तिञ्चेदं प्राणिजङ्म च, पतन्त्रिच, य चच स्थावरं सर्व तत्प्रज्ञानेत्रं प्रज्ञाने प्रतिष्ठितम्। प्रज्ञानेत्रो लोकः, प्रज्ञा प्रतिष्ठा। प्रज्ञानं ब्रह्म। -ऐतरेयो ३/१/३

ऋषि परमात्मा का स्वरूप वर्णन करते हुए कहते हैं यह जो आगे वर्णन होगा वह ब्रह्म है। यही इन्द्र-ऐश्वर्यमान है। यह ही प्रजाओं का पति-परमेश्वर है। ये सारे देव ये पांच महाभूत ये सब दूसरें तुच्छ मिले-जुले कीट पतंगे तथा बीज और दूसरे अण्डों से उत्पन्न होने वाले, जरायु से उत्पन्न होने वाले, पसीने से होने वाले, भूमि से निकलने वाले और घोड़े गऊ पुरुष आदि जो कुछ सांस लेनें वाला चलने फिरने वाला उड़ने वाला जगत् है तथा जो स्थावर है वह सब पूर्ण ज्ञान से चलाया जा रहा है। उसके सब नियम में ज्ञान है-चेतना काम कर रही है। सारा जगत् विश्व पूर्ण ज्ञान से चलाया जाता है। विश्व का नियन्ता पूर्ण ज्ञानी है। आधार है। वही पूर्ण ज्ञान ब्रह्म है। परमेश्वर निर्भान्त है। वह सर्वज्ञ है। वह विश्व का नियन्ता है। वह विश्व का संचालक है। विश्व का आश्रय है। उसी परम चेतन से विश्व चलाया जा रहा है।

ईश्वर सर्वज्ञः सर्वशक्तिमान प्रकाश स्वरूप मनोमयः प्राणशरीरो भारूपःसत्यसंकल्प आकाशात्मा। सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धःसर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यान वादरः॥ -छान्दो. ३/१४/२

वह परम पुरुश मनोमय-ज्ञानवान् है, पूर्ण ज्ञानी है। शक्ति ही उसका शरीर है-सर्व शक्तिमान है। वह प्रकाश स्वरूप है, सच्चे संकल्प वाला है, आकाशवत निराकार आत्मा है। सर्व कर्म समर्थ है। पूर्ण काम है। सर्वगन्ध ज्ञानवान् है। सर्व रस ज्ञान वान्। इस सारे शरीर को प्राप्त है-सारे शरीर में व्यापक है। शरीर में ओत-प्रोत है। वह वाणी से रहित है और संभ्रम-अप्राप्ति से ऊपर है। वह सर्व सुख सम्पन्न है जो उसकी उपासना करता है वह मुक्त हो जाता है।

ईश्वर सुख स्वरूप निराकार अनन्त है

प्राणो ब्रह्म। कं ब्रह्म। खं ब्रह्मोति। स होवाच विजानाम्यंह सत्प्राणो ब्रह्म, कं च तु खं च न विजानामीति। ते होचुर्यद् वाव कं तदेव खम्, यदेव खं तदेवकमिति। प्राणं व हास्मै तदाकाशं चोचुः। -छान्दो. ४/१०/१५

प्राण जंगत् का जीवनाधार ब्रह्म है। सुख स्वरूप ब्रह्म है। आकशवत् अनन्त निराकार ब्रह्म है। यह सुनकर वह-शिष्य बोला जो प्राण ब्रह्म है वह तो मैं जानता हूं किन्तु कं और खं मैं नहीं जानता। वे ऋषि बोले जो हीकम् सुख है वह ही खम-अनन्त निराकार है और जो ही अनन्त निराकार है वह ही सुखमय है। उसको प्राण जगत् का जीवन वह आकाश ही है। ऋषि ने कहा उस पर अनुकम्पा करके ऋषि ने शिष्य को उपदेश दिया कि ब्रह्म जीवन अस्तित्व, आनन्द और अनन्त है।

ईश्वर अलिप्त है।

य बषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष आत्मेति होवाच। एतमृतमभयमेतद् ब्रह्मोंति तद्यद्यप्यस्मिन्सर्पिर्वोदकं वा सिञ्चन्ति वर्त्मनी एव गच्छति॥ -छन्दो. ४/२५/१

जो वह आंख में पुरुष दीखता है यह आत्मा है यह उसने कहा। यह ही अमृत है। अभय है और यह ब्रह्म है। भीतरी आंख से जो-जो स्वरूप वा अपना आप दीखता है। उसी से तात्पर्य है। यह यद्यपि इस आंख में है परन्तु वह लिप्त नहीं होता यह अलिप्त है। जैसे लोग आंख में घी डालते हैं अथवा पानी डालते हैं परन्तु वह आंख में नहीं किन्तु किनारों को ही निकल जाते है। ऐसी ही अन्तर मुख हो कर देखा हुआ पुरुष परम निर्लेप तथा स्वतन्त्र है। यहां दर्शन शक्ति में ध्यान का संकेत है।

'आर्य जीवन' के पाठकों से

'आर्य जीवन' के पाठकों से अनुरोध है कि वे अपने लेख, संस्मरण, संकलन, अनूदित रचनाएं, बोध-कथाएं, कविताएं, आर्य-जगत् के समाचार आदि पत्रिका में प्रकाशनार्थ हिन्दी व तेलुगु में भेजें, परन्तु साथ ही निम्नलिखित नियमों का भी पालन अवश्य करें : १. लेख आदि आर्य सिद्धान्तों पर होने चाहिए।

२. प्रकाशनार्थ सामग्री साफ अक्षरों में लिखित व टाइप की हुई होनी चाहिए।

३. भाषा सरल एवं सुवोध हो।

सन्तुलित आहार : तनाव का उपचार

-ज्योति जोशी

आज कोई भी मनुष्य यह दावा नहीं कर सकता कि वह पूर्णतः तनाव मुक्त जीवन जी रहा है । हालांकि तनाव पूरी तरह नकारात्मक नहीं है । इसका सकारात्मक पहलू यह है कि कितनी ही चुनौतियाँ हों, उनसे दो-चार हो कर दम मन्जिल तक पहुँचने के योग्य वन पातें हैं ।

इसमें भी कोई दो राय नहीं कि तनाव की अति हमसे जीने का आनन्द छीन लेती है । ऐसा समय आ रहा है कि अब वच्चों, बड़ों और बुजुर्ग सभी को तनाव झेलना पड़ रहा है । इसका कारण यह है कि सामाजिक रहन-सहन, व्यवहार-परिवर्तित हो रहा है । हमारी खाने की आदतें बदल गई हैं । व्यक्ति न तो समय पर खाना खा रहा है, न ही पौष्टिक आहार का सेवन कर रहा है । तनाव, समय की कमी उसे बाजार का खाना-छोले-भटूरे, चाट, पकौड़ी, समोसे, फास्ट-फूड की तरफ अग्रसर करती है । कुछ लोगों की आदत होती है कि जैसे ही जरा-सा तनाव हुआ, उसे धुएँ में उड़ाने की कोशिश में सिगरेट पर सिगरेट फूंकने लगते हैं या फिर चाय, कॉफी के कप पर कप सुड़प जाते हैं, जबकि उनके स्वास्थ्य पर पड़ने वाले कुप्रभावों से वे भली प्रकार से परिचित होते हैं ।

यदि हम आहार का मानसिक तनाव पर प्रभाव देखें तो हम पाएंगे कि आहार ऊर्जा का स्त्रोत है, जिसे हम अपने शरीर को ईन्धन के रूप में प्रदान करते हैं । यदि हम पौष्टिक आहार लें व सुचारू रूप से समय नियोजन करें तो हमारा तनाव स्वं ही दूर हो जाएगा ।

आधुनिक परिवेश : हम काफी दूषित (कृत्रिम) आहार का उपयोग करते हैं । अधिक खाना खाते हैं, आराम देह जिन्दगी पसन्द करते हैं । कम से कम शारीरिक श्रम करते हैं । हम कार्य स्थल या अन्य जगहों में बैठकर बिना श्रम किए कार्य करते हैं । स्वयं न काम कर मशीन से काम लेते हैं । इस प्रकार हम शारीरिक रूप से निष्क्रिय होते जा रहे हैं । हमारी सम्पन्नता धीरे-धीरे बढ़ रही है, जिसके कारण हम ज्यादा कैलोरी व चरबी युक्त खाना खाने लगे हैं, इस तरह ईन्धन और ऊर्जा की खपत का सन्तुलन हमारे शरीर में अब बिल्कुल विगड़ चुका है ।

तनाव बढ़ाने वाले खाद्य पदार्थ

चाय-कॉफी : यदि हम अधिक मात्रा में चाय, कॉफी, एस्प्रीन व अन्य कैफीन युक्त पदार्थों का सेवन करते हैं तो ■इन पदार्थों के सेवन से तनाव वाली शारीरिक प्रतिक्रियाएँ तीव्र होती हैं । ■मानसिक तनाव बढ़ता है । ■स्नायु उत्तेजित हो जाते हैं, हृदय-गति बढ़ जाती है, साथ ही गुर्दे की ग्रन्थियाँ अधिक सक्रिय हो जाती है । ■रक्त वाहिनियाँ चौड़ी हो जाती हैं । गुर्दे की उत्तजना, सिरदर्द, सुस्ती, चिड़चिड़ाहट, माँस पेशियों की थकान, अवसाद, हृदयगति कमजोर पड़ना इत्यादि प्रभाव ज्यादा होते हैं, जब हम कैफीन युक्त पदार्थों का अधिक मात्रा में सेवन करते हैं ।

शक्कर : शक्कर अधिक मात्रा में खाने से रक्त में शक्कर की मात्रा अचानक बढ़ा जाती है । अत्यधिक ऊर्जा थोड़े समयं के लिए पैदा होती है, जो अस्थाई स्फूर्ति लाती है । शरीर में एड्रीनल ग्रथियाँ ज्यादा सक्रिय हो जाती है और वे रक्त में शक्कर की मात्रा को प्रभावशाली ढंग से नियन्त्रित नहीं कर पाती, जिससे थकावट, निराशा, चिड़चिड़ापन पैदा होने लगता है ।

नमक : नमक पोटेशियम के साथ काम करता है । शरीर में द्रव्य की मात्रा को नियन्त्रित करता है । इसकी अधिकता से उच्च रक्तचाप, अवसाद व चिड़चिड़ापन पैदा हो जाता है । अधिक मात्रा में नमक का इस्तेमाल करने से एन्ड्रीनल ग्रन्थियाँ अधिक सक्रिय हो जाती हैं ।

शराब : इससे रक्त वाहिनियाँ चौड़ी हो जाती हैं, रक्त में शक्कर बढ़ जाती है । शरीर और मंस्तिष्क को आराम सा अनुभव होता है, पर इसके अधिक सेवन से यकृत खराव हो जाता है, रक्त में शक्कर की मात्रा बढ़ जाती है, मस्तिष्क ठीक ढंग से कार्य नहीं कर पाता, हाथ-पाँव पर नियन्त्रण नहीं रहता और शराव की आदत लग जाती है ।

आहार विश्लेषण :

एक स्वस्थ जीवन के लिए यह आवश्यक है कि नियमित रूप से सन्तुलित आहार का प्रयोग करें, जिससे शरीर व सस्तिष्क दोनों सुचारू रूप से अपनी पूर्ण क्षमता से कार्य कर पाएं । हम कह सकते हैं कि सन्तुलित आहार वह आहार है जिसमें प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, खनिज तत्त्व, विटामिन आदि पर्याप्त व सन्तुलित मात्रा में हों । कुछ ऐसे पदार्थ भी होते हैं जिनसे मानसिक स्तर पर दबाव पड़ता है । इनके अत्यधिक सेवन से तनाव बढ़ जाता है । अत्यधिक कैलोरी प्रदान करने वाले अल्पाहार जो तुरन्त अधिक ऊर्जा देते हैं, उनसे बचना चाहिए । इनसे शरीर में आवश्यक तत्वों की कमी हो सकती है ।

सन्तुलित भोजन में जीवनीय तत्त्व अर्थात् विटामिनों का समावेश मनुष्य को विभिन्न रोग-विकारों से सुरक्षित करता है । चावल, दूध, मक्खन तथा दालों से विटामिन प्राप्त किए जा सकते हैं । शारीरिक शक्ति और रोग निरोधक क्षमता बनाए रखने के लिए विटामिन ए, बी, बी-२, बी-१२ का भोजन में होना आवश्यक है । विटामिन ए और बी के अतिरिक्त सी,डी, ई और के भी आवश्यक हैं । इनमें से किसी का भी अभाव व्यक्ति को रोगी वना सकता है । हरे पत्तों वाले शाक, गाजर, मूली, केला, आम तथा पपीता आदि में पर्याप्त विटामिन होते हैं । फलों में कैरोटीन के रूप में विटामिन होते हैं । कैरोटीन शरीर में पहुँचकर प्राकृतिक रूप से विटामिन ए और के में परिवर्तित हो जाते हैं ।

विटामिन ए-आम के १०० ग्राम रस से पर्याप्त विटामिन ए प्राप्त हो जाता है । इसके सेवन से रतौन्धी, आँतों के शोथ,

-शेष पृ. ११ पर

ईश्वर स्वरूप

प्रश्न-यह लोग कहते तो हैं कि ईश्वर है, परन्तु दिखाई नहीं देता, तब कैसे माना जाय कि कोई ईश्वर है ?

उत्तर-ऐसा भी तो होता है कि हमें पदार्थ दिखाई नहीं देते, फिर भीहम उनके अस्तित्व पर विश्वास रखते हैं। जैसे-

क) अति निकट होने से, जैसे आंख में सुरमा होता अवश्य है पर दिखाई नहीं देता।

ख) अति दूर होने से, जैसे बहुत ऊन्चा चढ़ा हुआ पक्षी अथवा पतंग।

ग) सूर्य के प्रकाश से दबने के कारण दिन के समय तारे।

घ) परदा सामने आने के कारण जैसे दीवार के पीछे खड़ा मनुष्य, अथवा कोलकत्ता, मुम्बई आदि नगर।

च) दो समान चीजों के मिलने से जैसे दूध में पानी।

छ) आंखों के जाते रहने से।

प्रश्न-फिर हम कैसे जानें कि ईश्व है ?

उत्तर-पहले हमें यह समझ लेना चाहिए कि पदार्थ जाने कैसे जाते हैं। हम संसार में किसी पदार्थ को, जैसा कि वह है, पूर्ण रूप से नहीं जान सकते। केवल उसके कुछ गुणों को जान सकते हैं और जितना-जितना उसके गुणों का ज्ञान होता जाता है उतना ही अधिक हम उस चीज को जानते हैं। परन्तु पूर्णतया हम फिर भी उसको नहीं जान सकते। परमात्मा की बात तो रही दूरकी, गुलाब के एक पत्ते का अथवा फूल की एक पंखड़ी का भी पूर्ण रूप से जानना कठिन है। अतः हम परमात्मा के भी गुण ही जान सकते हैं और जितना उन्हें अधिक जानते हैं उतना ही परमात्मा का साक्षात् होता है।

प्रश्न-हम परमात्मा का उसके गुणों में किसतरह साक्षात् कर सकते हैं ?

उत्तर-उसकी बनाई हुई सृष्टि को देख कर। सृष्टि की अद्भुत रचना तथा इसके सुप्रबन्ध को देखकर केवल इतना ही अनुमान नहीं हो सकता कि इसका बनाने वाला कोई है, बल्कि यह भी अनुमान हो सकता है कि वह बड़ा शक्तिशाली और ज्ञानवान् है। जिस प्रकार हम एक बड़े ऐञ्जन को देखकर अनुमान कर लेते हैं कि इसके बनाने वाले को किन-किन विद्याओं का ज्ञान होगा, इसी प्रकार परमात्मा की सृष्टि को देखकर अनुमान किया जा सकता है कि वह तेज का देने वाला, दया तथा न्याय का स्रोत, शक्ति का पुञ्ज, सृष्टि रचना में प्रवीण और उसके संचालन में समर्थ और निपुण है। इस तरह हम जितना परमात्मा के गुणों का चिन्तन करेंगे उतना ही उनके स्वरूप का साक्षात् होगा। परन्तु इसका पूर्णरूप से जानना कठिन है क्योंकि परमात्मा अनन्त है और जीव परिमित शक्ति वाला है। इसलिए उपनिषत्कार कहे हैं कि जो यह कहता है कि मैंने परमात्मा को पूर्णरूप सेजान लिया है वह मिथ्यावादी है। इसी तरह जो इस विस्तृत जगत् को देखकर भी यह कहता है कि मैं इसके बनाने वाले को बिल्कुल नहीं जानता वह भी मिथ्या प्रलाप ही करता है।

परमात्मा के दो रूप कहे गए हैं एक शवल और दूसरा शुद्ध।

ब्रह्म का शुद्ध स्वरूप-जो सारे तत्त्वों से व्याप्त ब्रह्म का स्वरूप है वह "शुद्ध" है।

ब्रह्म का शवल रूप-जो ब्रह्म का स्वरूप इन तत्त्वों के साथ मिलकर भासता है वह शबल रूप है जैसे लाट में अग्नि का शुद्ध रूप और अङ्गारे में शवल रूप है।

ब्रह्म सारी सृष्टि में रमा हुआ है। इसका जीवन बनकर इसको धारे हुए है। इसी से अग्नि जलती है। इसी से सूर्य चमकता है सूर्य का वास्तविक तेज वही है।

"उपलक्षण" से ब्रह्म का वर्णन-जहां किसी बाह्य पदार्थ के द्वारा उसके अन्तरात्मा पर दृष्टि ले जाना अभिप्रेत होता है उसको "उपलक्षण" कहते हैं।

ब्रह्म के शुद्ध स्वरूप वर्णन करने की दो विधियां-

'निषेध'- उन गुणों को लक्ष्य करके जो विद्यमान नहीं, परमात्मा का वर्णन "निषेध" कहलाता है ! जैसे-वृहदारण्यक उपनिपद में याज्ञवल्क्य गार्गी से कहते हैं-हे गार्गी ! इसको अक्षय (न क्षय होने वाला) कहते हैं। वह न मोटा है न पतला, न लम्बा है न चौड़ा और न लाल है (अर्थात् इसका कोई रङ्ग नहीं) वह बिना स्नेह के है, बिना छाया के है, बिना अन्धेरे के है। वह वायु नहीं, आकाश नहीं। वह असग है। वह रस, रूप, गन्ध से रहित है। उसके नेत्र नहीं, श्रोत्र नहीं, वाणी नहीं, मन नहीं। उसके तेज (जठराग्नि) नहीं, प्राण नहीं, मुख नहीं, परिमाण (नाप) नहीं। उसके कुछ अन्दर नहीं, कुछ बाहर नहीं। वह न कुछ भोगता है, न कोई उसका भोग करता है। इसी प्रकार "नेति-नेति" शब्दों से अन्यत्र भी उसका वर्णन किया गया है।

'विधि' परन्तु उन गुणों को लक्ष्य करके जो ब्रह्म में हैं उसका वर्णन करना "विधि" कहलाता है, यथा :-

तच्छुभ्रं, ज्योतिषा ज्योतिः- वह शुभ्रम है और ज्योतियों की ज्योति है।

विज्ञानमानन्दं ब्रह्म-वह विज्ञान और आनन्द है।

कविर्मनीषी परिभूःस्वयम्भूः- वह कवि है, मनीषी है, चारों ओरसे घेरे हुए है और स्वयंभू है। ब्रह्म ही सारे फलों को देने वाला है और वही सारी शक्तियों का भंडार है।

प्रश्न- परमात्मा कहां रहता है ?

उत्तर- परमात्मा हर जगह मौजूद है। कोई ऐसा स्थान नहीं जहां वह न हो।

प्रश्न- यदि यह मान लिया जाय जैसा कि कोई-कोई लोग मानते हैं कि परमात्मा शरीरधारी और सातवें आसमान पर अथवा वैकुण्ठ में रहता है और वहां से फरिश्ते अथवा दूतों द्वारा संसार का प्रबन्ध करता है तो क्या हानि है ?

उत्तर- यदि परमात्मा को एकदेशीय और परिमित आकार वाला मान लिया जाए तो-

क) परमात्मा सर्वव्यापक नहीं हो सकता। इसलिए सर्वज्ञ भी नहीं हो सकता।

ख) शरीरधारी होने के कारण यह मानना पड़ेगा कि उसका उत्पन्न करने वाला कोई और है। शरीर सम्बन्धी सारी व्याधियों और परिवर्तनों को भी मानना पड़ेगा।

ग) यदि यह कल्पना कर ली जाय कि परमात्मा ने अपना शरीर आप बना लिया, कोई अन्य इसे उत्पन्न करने वाला नहीं, तो इससे पहले की उसकी निराकार अवस्था माननी पड़ेगी ।

प्रश्न-निराकार किस प्रकार सृष्टि की रचना कर सकता है, यह हमारी समझ में नहीं आता ।

उत्तर-साकार किस प्रकार सृष्टि की रचना कर सकता है, यह हमारी समझ में नहीं आता ।

प्रश्न-यह क्यों ?

उत्तर-क्योंकि साकार कभी सृष्टि नहीं बना सकता । यदि मान लिया जाए कि हमारी पृथ्वी, जो सारे संसार में एक वहुत चोटी-सी चीज है, साकार परमात्मा ने वनाई तो उसके कितने बड़े हाथ होने चाहिएं, कितने वड़े औजार ? उसने मसाला कहां रक्खा होगा और स्वयं कहां बैठा होगा । फिर उन बड़े-बड़े हाथों से उन कीटाणुओं को कैसे बनाया होगा जो बड़ी-बडी अमुवीक्षणों (खुर्दवीनों) से ही दिकाई दे सकते हैं । इसलिए निराकार परमात्मा ही सृष्टि बना सकता है, चूंकि वह एक-एक अणु में व्यापक है इस वास्ते वह इसे उठा सकता है, हिला सकता है, दूसरे के साथ मिली सकता है ।

प्रश्न-परन्तु जव उसके हाथ पैर नहीं तो वह हाथ पैरों का काम कैसे कर सकता है ?

उत्तर-परमात्मा हाथ-पै न होने पर भी सारे काम कर लेता है । हमें हाथ की जरूरत उस समय पड़ती है जव हाथ सेदूर किसी चीज को पकड़ना अथवा उटाना होता है । जव हमें अपना हाथ उठाना होता है तो क्या इसे दूसरे हाथ से उठाते हैं । अथवा सिर हिलाना होता है तो क्या हाथों से पकड़ कर इसे हिलाते हैं चूंकि हाथ के और सिर के अन्दर इनको हिलाने की शक्ति है इस वास्ते दूसरे हाथ की सहायता की आवश्यकता नहीं होती । परन्तु अर्द्धांग अवस्था में शक्तिहीन होने के कारण वह अंग स्वयं नहीं हिल सकते । चूंकि परमात्मा के लिए कोई स्थान अथवा पदार्थ अप्राप्त नहीं, इसलिए इन्हें न हाथों की जरूरत है, और न आंखों की, न कानों की और न पैरों की ।

प्रश्न-आप परमात्मा को सर्वशतिमान् मानते हैं या नहीं ?

उत्तर-मानते हैं । पर उस तरह नहीं जिस तरह तुम मानते हो । सर्वशक्तिमान् का यह अर्थ नहीं कि परमात्मा वह बातें भीकरने लगे जिनकी उसको ज़रूरत नहीं अथवा जो उसके गुण, कर्म, स्वभाव के प्रतिकूल हैं । वल्कि इसका अर्थ यह है कि परमात्मा को अपना काम करने के लिए किसी अन्य की सहायता की जरूरत नहीं । उसमें सारी शक्तियां हैं और ये शक्तियां पूर्णरूप में हैं । यदि यह कहो कि परमात्मा सब कुछ कर सकता है, तो हम आप से पूछेंगे कि क्या परमात्मा अपने बराबर या अपने से वड़ा दूसरा परमात्मा पैदा कर सकता है, अथवा वह चोरी, करता है, शराव पीता है या अन्य दुराचार करता है ? निश्चय है कि आप ऐसा नहीं मानेंगे । अभिप्राय यह है कि जो बात परमात्मा में हो नहीं सकती उसकी सत्ता कैसे मानी जाए ?

प्रश्न-परमात्मा को आप न्यायकारी भी मानते हैं और दयालु भी । यह कैसे ?

उत्तर-इसमें तो कोई असम्भव बात नहीं । इन दोनों बातोंसे एक ही प्रयोजन सिद्ध होता है । दया का अर्थ यह नहीं कि किसी चोर अथवा डाकू को हाथ पैर जोड़ने पर छोड़ दिया जाए । इससे तो उनके साथ अन्याय होगा जिनके धन का उसने हरण किया है, अथवा जिनको मारा या लूटा है । नाम-मात्र कीदया अपराधी के लिए भी हानिकारक है, क्योंकि इससे पाप कर्म में इसकी प्रवृत्ति अधिक हो जाएगी और फिर इसे अन्त में घोर दण्ड का भागी वनना पड़ेगा । जव कोई अध्यापक किसी छात्र को गाली निकालने अथवा अपना पाठ याद न करने पर मारता है, तो क्या वह इस पर न्याय के साथ दया नहीं करता ? और माता जव अश्रुपूर्ण नेत्रों से अपने बालक की ताड़ना करती है तो क्या न्याय के साथ दया के भाव से उसका हृदय द्रवित नहीं होता ? अतः क्या जगत्जननी जव हमें हमारे कर्मों का दण्ड देती है उसमें उसकी दया का मिश्रण नहीं होता ? परमात्मा की इस इच्छा से कि उनके पुत्र सन्मार्ग पर चलकर सुख का उपभोग करें उनके लिए इतनी सुख की सामग्री का उत्पन्न करना क्या उनके दया भाव को नहीं दर्शाता ? वाह्य-दण्ड भी जो न्याय पर निर्भर होता है यही करता है कि अपराधी को सत्य मार्ग से विचलित होकर दुःख के गढ़े में न गिरने दे । इन दोनों का अभिप्राय एक ही है ।

प्रश्न-परमेश्वर एक है अथवा अनेक ? योरप के विद्वान् कहते हैं कि प्राचीन आर्य भिन्न-भिन्न देवताओं को मानते थे । वे एक ईश्वर के उपासक न थे ।

उत्तर-अव तो वे भी ऐसा नहीं कहते । शास्त्र कहते हैं कि परमात्मा एक है[1], अद्वितीय है, अनुपम है अर्थात् न उन जैसा कोई दूसरा है, और न किसी अन्य को उससे उपमा ही दी जा सकती है । देव के अर्थ द्वियगुण वाले के हैं । इनमें सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि जड़ देवता और गुरु, पिता, राजा, विद्वान् आदि चेतन देवता आ जाते हैं[2] । जिन ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, वायु, वरुण, अग्नि आदि को योरप के विद्वान् देवता बताते रहे हैं वे वास्तव में परमात्मा के ही भिन्न-भिन्न नाम हैं- अथवा उनकी भिन्न-भिन्न शक्तियों के प्रदर्शक हैं चूंकि सारे जड़ और चेतन देवता तथा सारी दिव्य शक्तियां परमात्मा में ही निवास करती हैं इसलिए इसे देवों का देव महादेव कहा जाता है ।

हमने परमात्मा के स्वरूप को दिखाने के लिए इनके कुछ विवादास्पद गुणों का वर्णन किया है । परमात्मा के असंख्य गुण हैं, कुछ एक का वर्णन आगे आएगा परन्तु जो परमात्मा का एक नाम सच्चिदानन्द (सत्-सदा एक रस रहने वाला, चित् अर्थात् चेतन और आनन्द अर्थात् दुःख रहित होता) है जो जीव और प्रकृति से भिन्न है वह संक्षेप में उनके वास्तविक स्वरूप को बताता है । "ओ३म्" परमात्मा का निज नाम है जिसमें सारे गुणों का समावेश आ जाता है ।

ईश्वर पूजा

प्रश्न-क्या ईश्वर हमारे पापों को क्षमा कर देता है ?

...पृ. ८ का शेष.

उत्तर-नहीं ।

प्रश्न-तो फिर सन्ध्या प्रार्थना करने से क्या लाभ ?

उत्तर-सन्ध्या का यह अभिप्राय तो नहीं कि किसी के यहां चोरी कर ली और फिर गिड़गिड़ा कर क्षमा मांग ली-चलो बस छुट्टी हो गई । इससे तो परमात्मा के न्याय पर दोष लगेगा ।

प्रश्न-तो फिर सन्ध्या आदि सेक्या लाभ ?

उत्तर-सन्ध्या के तीन भाग हैं-स्तुति, प्रार्थना और उपासना ।

स्तुति-जब हम वेदादि मन्त्रों द्वारा परमात्मा के गुणों का वर्णन और चिन्तन करते हैं तो उनके गुण, कर्म स्वभाव से अपने गुण, कर्म स्वभाव में सुधार करते हैं ।

प्रार्थना-प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और ईश्वरीय सहाय मिलता है । प्रार्थना तभी सफल होती है जब उसके अनुकूल आचरण हो, परमात्मा सच्ची प्रार्थना को सुनते हैं, झूठे प्रलाप को नहीं । परमात्मा उसकी ही सहायता करते हैं जो अपनी सहायता आप करता है ।

उपासना-उपासना से पारब्रह्म का सामीप्य और उसका साक्षात्कार होता है । उपासना का अर्थ पास बैठना है जब एक साधक को परमात्मा का साक्षात् होता है तो उसको उपासना का फल मिलता है । उपासना का फल प्राप्त करने के लिए यम३ नियमों का पालन और अष्टाङ्ग योग का साधन करना चाहिए । जिस प्रकार शीत में अग्नि के पास जाने से शीत दूर होकर आनन्द का भान होता है इसी प्रकार ईश्वर के साक्षात् होने पर मनुष्य के सारे क्लेश जाते रहते हैं ।

निर्गुण सगुण विचार

पौरा.-पूजा निर्गुण ब्रह्म की करनी चाहिए अथवा सगुण की ?

आर्य-आपका सगुण और निर्गुण से क्या अभिप्राय है ?

पौराणिक-जब परमात्मा अवतार लेता है अर्थात् शरीरधारी बनता है तो उसे सगुण और जब-जब अपने निराकार रूप में होता है तो उसे निर्गुण कहते हैं ।

आर्य-क्या निर्गुण निराकार ब्रह्म में कोई गुण नहीं होते ?क्या वह उस समय सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् सच्चिदानन्द, दयालु, न्यायकारी आदि गुणों से सम्पन्न नहीं होता ?

पौरा.-होता है ।

आर्य-तो आपने सगुण निर्गुण का यह अर्थ क्यों किया ?

पौरा.-तो फिर इन शब्दों काक्या अर्थ होना चाहिए ?

आर्य-सगुण का अर्थ है गुण वाला । निर्गुण का अर्थ है कि जिसमें विशेष गुण न हों जैसे सगुण-सच्चिदानन्द, न्यायकारी, दयालु, सर्वज्ञ, कवि, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान्, सृष्टिकर्ता । और निर्गुण-अजर, अमर, अनादि, अनुपम निर्विकार, अजन्मा ।

टप्पणी :

१) एको देवः सर्वभूतेषु गुढः सर्ववपी सर्वभूतान्तरात्मा । कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ।

-श्वेताश्वतर उपनिषद् ६-१९ ॥

अर्थ-एक देव सारे भूतों में छिपा हुआ, सर्वत्र व्यापक, सब जीवों का अन्तर्यामी है, कर्मों का अधिष्ठाता है, सब जीवों का आधार है, साक्षी चेतन है, केवल (अद्वितीय) है और निर्गुण है।

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युज्यते, न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमोनाप्युच्यते, नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते, स सर्वस्मै विपश्यति यच्च प्राणिति यच्च न तभिदं निगत सहः स एष एक एकवृदेक एव । सर्व अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति । -अथर्ववेद १३।५।।

अर्थ-वह न दूसरा है, न तीसरा है, न चौथा कहलाता है । न पांचवां है, न छटा है, न ही सातवां कहलता है, न आठवां है, न नवां है और जो नहीं लेता है, वह शक्ति से परिपूर्ण है, वह एक है, एक तत्त्व है, उसमें सारे देवता आकर एक हो जाते हैं ।

द्वौ सन्निषद्य जन्मन्त्रयेते राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः । -अथर्ववेद ४।१६।२।।

अर्थ-दो मनुष्य इकट्ठे बैठकर जो गुप्त मन्त्रणा करते हैं राजा वरुण (परमात्मा) उनमें तीसरे होकर उसको जानते हैं ।

२) इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः
अथो दिव्यः सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति,
अग्नि यमं मातरिश्वानमाहुः ।
-ऋग्वेद मङ. १, सूक्त १६४, मं. ४६।।

अर्थ-जो एक अद्वितीय सत्य ब्रह्म वस्तु है उसी के इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, सुपर्ण गरुत्मान्, यम और मातरिश्वा ये नाम हैं ।

३) १. यम, २. नियम, ३. आसन, ४. प्राणायाम, ५. प्रत्याहार, ६. धारणा, ७. ध्यान, ८. समाधि ।

अम्लपित्त, अतिसार रोग नष्ट होते हैं । ६० ग्राम पालक, ३०० ग्राम मक्खन, २५० ग्राम टमाटरों में से किसी एक से ५००० युनिट विटामिन ए प्राप्त किया जा सकता है ।

विटामिन बी-२-इसको रिनोफ्लेविन भी कहते हैं । इसके अभाव से श्लैष्मिक कला का वर्ण श्वेत हो जाता है । विटामिन बी दूध, खमीर, हरी सब्जियों और पनीर से प्राप्त किया जा सकता है । अनाजों और दालों में भी विटामिन बी-२ होता है । हमें प्रतिदिन २, ३ मिलीग्राम की आवश्यकता होती है ।

विटामिन 'बी-६'-यह 'निकोटिनिक अम्ल' के नाम से अधिक प्रसिद्ध है । भोजन में इस विटामिन की पर्याप्त मात्रा होने से शारीरिक व मानसिक रोगों से मुक्ति मिलती है । यह विटामिन छिलके वाले अनाज, चावल, फल, सब्जियों, दूध और मैदा से प्राप्त किया जा सकता है, एक वयस्क व्यक्ति को प्रति दिन १५ मिलीग्राम विटामिन बी-६ की आवश्यकता पड़ती है ।

विटामिन सी-इसे 'एस्कॉर्बिक अमल' भी कहते हैं, इसके अभाव में मस्तिष्क को हानि पहुँचने लगती है, जिससे मानसिक तनाव उत्पन्न होने लगता है । इसके अतिरिक्त सन्धियों में पीड़ा, नेत्र ज्योति की क्षीणता, स्कर्वी रोग और मसूढ़ों में विकृति उत्पन्न होती है । रक्त के जमने की शक्ति क्षीण हो जाती है । एक बार चोट लगने से रक्त स्राव प्रारम्भ हो जाए तो फिर बन्द नहीं हो पाता । विटामिन 'सी' फल और सब्जियों मेंपर्याप्त मात्रा में होता है । सन्तरा, नारंगी, नीबू, टमाटर, आँवला, अंगूर, गाजर और अंकुरित दालों में विशेष मात्रा में होता है । एक वयस्क व्यक्ति को प्रतिदिन ५० मिग्रा विटामिन की आवश्यकता होती है, गर्भवती में स्त्री को १०० मिली की आवश्यकता होती है ।

विटामिन 'डी'-इन विटामिन की कमी से स्मरण शक्ति नष्ट हो जाती है तथा अस्थि रोग रिकेट्स की उत्पत्ति होती है । यह विटामिन प्रातःकाल की सूर्य रश्मी से प्राप्त होता है । प्रतिदिन प्रातः सूरज के रोशनी में बैठने से स्वास्थ्य के लिए लाभदायक होता है ।

MAHARISHI DAYANAND FOUNDER OF ARYA SAMAJ

"Among the great company of remarkable figures at the head of all the Indian Renaissance one stands out by himself with the peculiar and solitary distinctness, one unique in his type as he is unique in his work. It is as if one were to walk for a long time amid a range of hills rising to a greater or lesser altitude, but all with sweeping contours, green-clad, flattering the eye even in their most bold and striking elevation. But amidst them all, one hill stands apart, piled up in sheer strength, a mass of bare and puissant granite, with verdure on its summit, solitary pine jutting out into the blue, a great cascade of pure vigorous and fertilizing water gushing out from its strength as a very fountain of life and health to the valley. Such is the impression created on my mind by Dayanand."

The above statement of Aurobindo Ghosh might well demonstrate the passionate tone of poet, but in its spirit and substance it conveys a historical truth. In the galaxy of the great men who rescued India from the clutches of degeneration of despondency in the neneteenth century, Dayananda Saraswati (1824-1833) occupies a very important place. Possessed of sharp intellect, rational thinking and a vision far ahead of his time, he ceaselessly worked for religious reformation, social reconstruction, cultural regeneration and political emancipation of his country. He 'transfused into her morbid body his own formidable energy, his certainty, his lion's blood', and thus came to share with other great sons of India, the coveted title of the Maker of Modern India.

A BRIEF LIFE SKETCH

Dayananda was born in 1924 at Tankara, a small town in the princely state of Morvi, Gujarat, in an orthodox Brahmana family. he left his house in 1836, to devote himself to the introspection on life and its ultimate meaning. He became an ascetic and roamed about the a little over fourteen years, visiting one place after the other, seeking the help of literally hundreds of sadhus and yogis for the solution of his problem. Despite his frantic search the inquisitive ascetic could get no teacher with a critical enough apporach to popular religious beliefs to satisfy his exacting standrds.

However, In 1846, by a stroke of chance, he found at Mathura a teacher of his choice in an old blind sanyasi, Virjananda Saraswati (c.1779-1868). Possessed of a powerful intellect and prodigious memory, the sanyasi was well-versed in the Vedas and Shastras, and his mastery over Sanskrit grammar was unrivalled. He introduced Dayananda, after his preliminary in-depth study of the Sanskrit grammar to the Vedas and Shastras, which revolutionized his entire thinking. He was no more a pessimistic thinker disinterested in everything except his own well-being now. He was now a true yogi, a man of action, with 'God in his soul, vision in his eyes, and power in his hands', and his chief concern was the well being of his three hundred million countrymen sunk in the densest depths of ignorance, sloth and inertia.

The year 1869 is very important in Dayananda's life when he went to kashi, the seat of the Hindu arthodoxy and launched a forceful attack on the monstrous excrescence that had wraped both Hinduism and India for thousands of years. Here on 16th November 1869, was held the historic contest in the presence of about 5,000 people, Dayananda, alone on one side and three hundred of the most learned and influential pandits of orthodox Hinduism, led by Swami Vishuddananda, on the other, Ishwari Prasad Narain Singh, the ruler of Kashi, was in the chair and the subject for disputation was whether the Vedas permitted idolatry. The orthodoxy proved no match to Dayananda and felf discomfited under the pressure of his sound scholarship and logical strokes. Ultimately, in the words of the Hindu Patriot, 'finding it impossible to overcome the great man (Dayananda) by regular discussions, the pandits resorted to a sinister course to subserve their plans'. They raised pandemonium and the hired ruffians threw brickbats and stones on the victor.

The hooliganism could not deviate Dayananda from his chosen path. He accelerated the pace of his activities. Moving from one end of the country to another, with incredible quickness, he visited almost every part of India from Cape Comorin to the Himalayas, from Calcutta to Bombay. Erect and tall (six foot-fourt), spare figure topped by a round handsome face, with a long, sharp nose and deep jet-black eyes, he attracted the masses wherever he went. he was a fine orator, possessed of great persuasive power. He could be extremely plausible even while

parted with your national pride and prestige ? Why cannot you walk with heads erect and high ? 'In the whole world there is no country like India, he thundered. he told them to look at their past which was so great and glorious. he narrated impassioned, though not alway scientifically correct, historical episodes to substantiate his statements. The Indians were the sole overlords of the whole world. There were their dependent rulers in other countries. Now Europeans seem to be cultured and educated to you. You praise their cultural achievements. But as a nation they are nowhere as compared to us. Culturally we are far superior a nation. We were sometims world teachers', he observed.' All education that has spread in the world sprang originally from India. Then it went to Egypt, from there to Greece, from Greece to Turkey and then to Europe. From Europe it went to America and other countries'.

He quoted the authorities of the foreigners to convince his people of the correctness of his stand. Jacoiet, a French scholar, he said, had written in his book The Bible in India : 'India is the fountain-head of all knowledge and all righteousness. All knowledge and all religions have sprung from here'. He (Jacoiet) prays in the book, said Dayananda, "O God make my country as advanced in knowledge as India was in olden days. But now misfortune has over shadowed the descendants of the world teachers and world-rulers and they are down-trodden under the heels of foriegners'.

He made a fervent appeal to his country men to take pride in their land, and things made by their own brethren in preference to the ones made in other countries. Dayananda was possibly not the first author of the swadeshi Movement in India, as Dr. R.C. Majumdar has pointed out, but he was certainly its first forceful advocate in modern times. he laid great stress on its as a means for the reconstruction of India's economy, as also for its social and political unity. 'Look at the Europeans', he observed, 'they have come into this country for a little more than a hundred years, yet they wear coarse cloth made in their own country. They allow into their offices and courts only English shoes and no Indian shoes. This one point is sfficient in their behavior to show how patriotic they are-they respect the shoes made in their country more than they respect the men of other countries. These Europeans have not forsaken the ways of their country. These qualities and deeds have contributed to their advancement.

Although appreciative of their reforming zeal, Dayananda lashed out at the Brahmo Samajists and the Prarthana Samajists for looking towards the west for inspiration and light. 'Do you think', he asked them 'that this attitude of yours will do you and your country good...'? There have been in India many men of learning from Brahma onwards. Not to appreciate them and to go on praising Europeans is nothing short of prejudice and flattery. Commenting on their following the western ideals, he observe : 'When they are born in India, they have eaten and drunk water of this country and are still doing the same, it does not behave them to abandon the path of their ancestors'. He disliked their founding a new religion 'in their pride for English education'. Their reforms seemed to be superfical to him.

They are working under false nations that they and their country would be regenerated simply by removing the restrictions of food (interdining with persons belonging to different faiths) and caste. They have no remedy for the country that I am ailing. Europeans do not care for them and the people of India look upon them as aliens... They have not been able to do well to the country.

A CLARION CALL FOR SWARAJ

He made a forceful plea for political independence of the country. "The 'swarajya', was always the best thing. A foreign government could not be beneficial even when it was free from religious bias, race prejudice and was just and sympathetic." Therefore come out in the sixth chapter of his magnum opus, Satyartha Prakash, 'to form you own government for that was God's dispensation'. In a religious garb, the great statesman-sanyasi gave an open message of an all-out revolt against the british Raj : Let no man abide by the law down by men ignorant of the Vedas.

A man should use all his influence and power to destroy a sovereign who does not happen to be acquainted with the intricacies of the Vedas.

A King should have seven or eight good, righteous and intelligent ministers born in Swadesh and swarajya who are well conversant with the Vedas.

These statements, said Mr. Grey, the public prosecutor in the notorious 'Arya Samaj Sedition Case, Patiala, 1910', 'read as political speeches made by Tilak or Bipin Chandra Pal at a meeting or conference, except that they go further than any one dare go in lecturing to the public'.

facing a wholly hostile audience and very often those who came to heckle him remained to applaud.

HIS BELIEFS

He denounced evils and vulgarities spread by the vested interests in the name of religion, with an almost divine passion. With the Vedas in hand, he challenged the Hindu orthodox establishment to justify on their basis polytheism, pantheism, idol worship, casteism, untouchability, infant marriages, forced widowhood, sati, infacticide and a hundred and one other superstitions degenerating Hinduism. Both the vanguard and the reserve of the orthodoxy came forward to silence him. But Dayananda's profound scholarship, incisive logic, powerful persuasion and opportune hammering's brought them to their knees.

Besides the work of social reform, Dayananda also gave serious thought to three other problems faced by his countrymen, namely, illiteracy, economic poverty and political dependence. To eradicate the problem of illiteracy, he envisaged free and compulsory education for all. There should be a state legislation, he said, to the effect that nobody should keep his ons or daughters away from school. Also, the state should own the responsibility of educating its citizenry without any discrimination between the rich and the poor.

His understanding of the problem of poverty was still sharper. India had never suffered such a calamity before. Dayananda observed. Known as the 'golden chersonese' in the old annals, flowing with milk and honey, this land was, truly speakinng, 'the proverbial philosophers' stone, by the mere touch of which the base metals of the foreigners used to turn into gold'. But ignorance and illiteracy, slavery and selfishness, inaction and indolence on the part of its people had turned the land of plenty into the land of abject poverty and suffering. An he believed, that 'this ancient land of the Aryas would go on suffering in the present manner so long as its people did not give up superstitions and backward notions, in action and laziness'. He also laid stress on going in for science, and technology and swadeshi products.

The third problem, i.e. arousing of political consciousness and national awarness among the people was also very formidable. To begin with, he examined the plans of his predecessors in this regard which did not appeal to him at all. The early national leaders, though well-intentioned, had borrowed too heavily from the west. he believed that no nation could be built its edifice on a foreign foundation. He, therefore, gave clarion call to his countrymen to go back to the Vedas and to lay their foundation on them, This was, as rightly pointed out by Aurobindo Ghosh, surely a master glance of practical intuition on Dayanand's part, for in a real sense, the Vedas were the original source of religion, culture and civilization of India. They were the foundations of Indian thought, philosophy and knowlege and they concealed the seed for a radical new birth of the Indian nation.

A NATION BUILDER

After providing the foundations Dayanands took up the task of building up the national edifice-a magnificent skyscraper. But he felt that single-handed he would not be able to accomplish this gigantic task effectively. He, therefore, founded an organization, the Arya Samaj at Bombay on April 10th, 1875. The ranks of the newly founded organization were thrown open by the liberal leader to all and sundry, irrespective of caste, creed and religion, provided they adhered to the following principles:

i) Of all true knowledge and whatever is known from knowledge the primary cause of God.
ii) God is an embodiment of truth, intelligence and bliss and one without form, all powerful, just, kind, unborn, infinite, unchangeable, beginning less, incomparable, support of all, all pervading, omniscient, un deteriorable, immortal, fearless, eternal, holy and creator of the Universe. he alone is worthy of worship.
iii) The Vedas are the books of all true knowledge. It is the paramount duty of all Aryas to read them, to teach them, to hear them and to preach them.
iv) The chief object of the Arya Samaj is to do well to the world, i.e. to make physical, spiritual and social improvement.
v) We should ispel ignorance and diffuse knowledge.
vi) Nobody should remain contented with his personal progress, one should count the progress of all as one's own.
vii) Everyone should consider himself as bound in obeying social and all benefiting rules, but everyone is free in matters pertaining to individual well-being.

The Arya Samajas were set up in almost all the provinces of India and Dayanand's inspiring message reached the masses through them. He posed searching questions to his countrymen, why do you feel inferior to others ? What is it that makes you ashamed of calling yourselves Indians ? Why have you

गीता में ईश्वर की चर्चा

-भद्रसेन

गीता का प्रादुर्भाव-यह एक प्रामाणिक तथ्य है कि गीता महाभारत का अंश है। तभी तो उसके प्रत्येक अध्याय के अन्त में महाभारत के स्थलका संकेत होता है। आज महाभारत की कथा सर्वथा प्रसिद्ध है। जब दुर्योधन ने श्रीकृष्ण जी के शान्ति प्रस्ताव को ठुकरा दिया तो युद्ध अनिवार्य बन गया। अतः दोनों पक्षों की सेनाएँ कुरुक्षेत्र में आमने-सामने आ गई। विपक्ष में पितामह भीष्म और गुरु द्रोणाचार्य को देख कर पाण्डु पुत्र अर्जुन ने अस्त्र-शस्त्र भूमि पर रख दिए। यह देख कर सारथी श्रीकृष्ण जी ने अपने मित्र अर्जुन को समझाया। जो कुछ समझाया वही गीता है।

आज जिस रूप में गीता उपलब्ध है उस में केवल युद्ध क्यों करना पड़ रहा है, इसकी हीचर्चा नहीं है। इस प्रसंग के साथ वेद, योग, ईश्वर आदि दर्जनभर भारत में प्रचलित सर्वजन के हितकर तत्वों की भी चर्चा है। इन्हीं में एक ईश्वर वर्णन भी है। जिस पर भेद-उपभेद सहित विचार किया गया है।

यहाँ परमेश्वर, महेश्वर, परमात्मा, प्रभु, ब्रह्म आदि अनेक नामों से चित्रण किया गया है।

शाब्दिक अर्थ-संस्कृत भाषा के शब्द प्रकृति+प्रत्यय के मेल से बनने के कारण अपनी कहानी आप कहते हैं। अतः ईश्वर शब्द का अर्थ है-ईश, ईशन वाला। ईश= स्वामी=मालिक=सँभाल करने वाला, सँभाल में पहले उसकी उपस्थिति अपेक्षित है, जिसकी सँभाल करनी है। तभी तो भारतीय शास्त्र परमसत्ता की परिभाषा (=पहचान) **'जन्माद्यस्य यतः'** वेदान्त १.१.२=जन्म, पालन-संचालन-उपसंहार द्वारा जो संसार रूपी रचना को करता है। **ईशान**= शासन-प्रशासन=व्यवस्था करने वाला। तभी तो गीता ने कहा है-

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्टति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥ -१८.६१

मायया=निपुणता से व्यवस्था के अनुरूप अर्थात् जिस जीव ने अपने पूर्व जन्म में जैसे कर्म किए उसके अनुसार वैसा कर्मफल-अवसर देने के लिए एतदर्थ अपेक्षित पूर्वतः सुनिश्चित होना चाहिए, कि किस कर्म का कब, कैसा कर्मविपाक होता है। उसका विश्वास दिलाते हुए गीताकार कहता है कि यह सब जग का स्वामी मायापूर्वक व्यवस्था को सामने रख कर करता है। तभी वे सभी के सभी **यन्त्रारूढानि**=संसार रूपी यन्त्र पर सवार जितने भी सर्वभूतानि=प्राण लेने-छोड़ने वाले हैं, उन-उन को **भ्रामयन्**=इधर-उदर, यहाँ-वहाँ घुमाता हुआ तदर्थ विविध प्रकार के चित्र-विचित्र देह धारण कराते हुए अपने मुख्य कार्य को, आनन्दानुभूति को करता है। इसीलिए कहा जाता है, कि वह सच्चिदानन्द स्वरूप है। यह **'इयं विसृष्टिः'** यह जो विविध-विचित्र विशिष्ट-विभिन्न रूपी जगत्-सर्जना है उसको अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए नहीं, अपितु नानाविध चाहना रखने वालों को प्रगति का अवसर देने के लिए करता है। जैसे कि हम प्रतिदिन देखते है, कि अनन्त यात्री अपनी-अपनी इच्छानुसार स्व. अभीष्ट को साधने के लिए अनेक प्रकार के यानों से यात्रा करते हैं। यह सारी व्यवस्था वह परमसत्ता करती है। उस के इस व्यवस्थापन में एक सजगता, सर्वज्ञता है। एतदर्थ वह परमसत्ता **सर्वभूतानाम्**= अपनी-अपनी भू=सत्ता, उपस्थिति नित्यता रखने वाले सर्व विद्या (जरायुज-अणअडज-उद्भिज्ज-स्वेदज) प्राणियों के **हृद्देशे**-हृदय प्रदेश, मर्मस्थल, घट-घट में **तिष्टति**=विराज रहा है, विद्यमान रहता है, बसता है। प्रत्येक प्राणी की अपनी-अपनी जीवन यात्रा का, रक्त-श्वसन तन्त्र का एक मूल केन्द्र, प्रिय स्थल, अपनापन अनुभूति का आश्रय है। जहाँ वह अपने स्वामी से, अपने आप से अपनापन अनुभव करता है। वहाँ वह जब कभी निकटता, एकाकीपन, कैवल्य, सुख समझता है वेदादि शास्त्रों और सन्तों ने पूजा, भक्ति, उपासना हृदय में ही करने का सन्देश दिया है। यतो हि दोनों का वहीं वास है।

हृदि सन्निनिष्टः १५,१५

इस श्लोक में आया 'माया' शब्द विशेष रूप से विचार्य है। यहाँ यह **मायया** रूप में है। **कर्तृकरणयोस्तृतीया**-पाणिनि २,३,१८१ तृतीया विभक्ति यहाँ है, तृतीया विभक्ति को करण कहा जाता है। करण की परिभाषा स्पष्ट करते हुए कहा है- **साधकतमं करणम्** पा. १,४,४२=कार्य के करने में जो सबसे अधिक सहायक होता है, वह साधक करण कहा जाता है। काल, दिशा आदि की अपेक्षा वह अधिक सहायक रहता है। गीता में माया शब्द अनेक बार आया है। वहाँ भ्रम जनक मिथ्या ज्ञान का ही भाव है।

प्रस्तुत प्रसंग में 'कर्मफल व्यवस्था के अनुरूप' सर्वथा उपयुक्त अर्थ है। भारतीय शास्त्रों में इसी तथ्य का समर्थन प्राप्त होता है **'नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न तेभ्यः प्रभवति'** (भर्तृहरि=नीतिः ९५) कर्म ही मूल आधार हैं।

वेद का भी यही सन्देश है **स पर्यागात्..... यथातथ्यतऽर्थान व्यदधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः।** -यजुर्वेद ४८.८

वह सर्वव्यापक-नित्य रहने वाली प्रजाओं को यथा-तथा (कर्मानुरुप) फल देता है।

भारतीय चिन्तन में माया शब्द-माया शब्द माङ् (माने) के आधार पर सिद्ध होता है। माया शब्द प्रकृति का वाचक भी प्रतीत होता है। श्वेताश्वतर उपनिषद् का यह वाक्य-

मायां तु प्रकृति विद्धि, मायिनं तु महेश्वरम्

यहाँ माया शब्द से बोधित प्रकृति विविध विकृतियों के पश्चात् पाँच भूतों के रूप में परिणत होती है। यह भौतिकता ही हमारे व्यवहार का आधार बनती है। वैशेषिक दर्शन में इन पाँच भूतों को विशेष नाम दिया गया है। यतो हि जगत् के व्यवहार में प्रमुख होने से ही भूतों का विशेष नाम

शेष पृ. १७ पर

वेद में त्रैतवाद

-पं. जगदीशचन्द्र शास्त्री

सृष्टि की मीमांसा करने वाले सभी तत्वदर्शियों ने गम्भीर विचार करने के अनन्तर यह सिद्धान्त स्थिर किया है कि इस विशाल सृष्टि के मूल में तीन तत्त्व कार्य कर रहे हैं। इन तीनों में से किसी एक की भी उपेक्षा करने से संसार की समस्याओं का समाधान कदापि नहीं हो सकता। ये तीन हैं-ईश्वर, जीव और प्रकृति।

भारत के अद्भुत तार्किक और न्याय शास्त्र के महान् विद्वान् श्री उद्यनाचार्य ने तो अपनी न्याय कुसुमाञ्जलि में डंके की चोट से कह दिया था कि-

एकस्य न क्रमः क्रापि वैचित्र्यं च समस्य न। शक्तिभेदो न चाभिन्नः स्वभावो दुरितक्रमः॥

आचार्य का कहना यह है कि सर्वथा एकमात्र तत्त्व से संसार की समस्या का समाधान नहीं हो सकता। कार्य-कारण-भाव से भरपूर इस सृष्टि को किसी एक कारण से सम्बद्ध नहीं किया जा सकता। संसार का कोई सामान्य सा कार्य भी अपनी सत्ता सिद्धि के लिए कई कारणों परमावश्यक सहयोग चाहता है। उदाहरण के लिये घड़े को ही ले लीजिए। घड़ा बनने के लिये कई कारणों की आवश्यकता है-मिट्टी, पानी, दण्ड, चक्र, कुम्हार-ये तो बहुत ही आवश्यक हैं। इनमें मिट्टी वह तत्त्व है, जिस को घड़े का रूप धारण करना होती है। यदि यह तत्त्व न हो तो घड़े नाम की वस्तु प्रत्यक्ष नहीं हो सकती। इसके साथ ही यदि मिट्टी में पानी न मिलाया जाए और गूँथन करके पिन्डाकार न बनाया जाये तो केवल मिट्टी से भी घड़ी नहीं वन सकता। इसलिये घड़ा बनाने के लिए मिट्टी से अतिरिक्त पानी की भी आवश्यकता है। ये दो कारण उपस्थित होने पर भी यदि कुम्हार न हो तो भी घड़े की सत्ता का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता। कारण वह है कि मिट्टी और पानी चेतना शून्य होने से परस्पर गुन्थित होकर घड़े का आकार धारण करने में सर्वथा उसमर्थ हैं। कुम्हार भी मिट्टी से घड़ा बनाने के लिए दण्ड, चक्र आदि साधनों की अपेक्षा रखता है, क्योंकि कोई भी चेतन कर्त्ता किसी भी कार्य की उत्पत्ति के लिये साधनों की अपेक्षा रखता है। इस प्रकार प्रत्येक कार्य के लिये कारण-सामग्री की परमावश्यकता है। दार्शनिक परिभाषा में इसको तीन कारण अर्थात् उपादान-कारण, साधारण-कारण और मिमित्त-कारण के नाम से कहा जाता है।

आप लाख यत्न कर लीजिये एक कारण की आवश्यकता को दूसरा कारण और दूसरे की आवश्यकता को तीसरा कारण कदापि पूर्ण नही कर सकता। यह वह सच्चाई है जिसका अनादिकाल से परीक्षण होता आया और प्रत्येक परीक्षण का यह ही परिणाम निकलता रहा। यह एक-कारण-वाद चाहे प्रकृतिवादी की ओरसे उपस्थित किया जाये अथवा चेतनवादी या ब्रह्मवादी की ओरसे, परन्तु दोषों की समानता समान रूप से दोनों पर लागू होगी। जड़ प्रकृति को जगत् रूप होने के लिये चेतन अथवा ब्रह्म की उसी प्रकार आवश्यकता होगी, जिस प्रकार कि जड़ और चेतना शून्य मिट्टी को घड़ा वनने के लिये चेतन कुम्हार की आवश्यकता होती है। ब्रह्मवादी भी एक ब्रह्म मात्र से सृष्टि की मीमांसा नहीं कर सकता है, क्योंकि चेतन ब्रह्म को भी सृष्टि बनाने के लिये अपने से भिन्न जड़ प्रकृति की उतनी ही आवश्यकता होगी जितनी चेतन कुम्हार को घड़ा बनाने के लिये जड़ मिट्टी की आवश्यकता होती है। इस प्रकार विचार करने से यह सिद्ध होता है कि कोई भी एक तत्त्व-चाहे वह जड़ हो या चेतन हो-बिना दूसरे की सहायता के कार्य की उत्पत्ति में समर्थ नहीं हो सकता। इसी लिये एक-कारण-वाद दर्शन शास्त्र में कुछ भी महत्त्व नहीं रखता। उपर्युक्त कारण त्रयवाद अर्थात् त्रैतवाद को परिपुष्ट और स्पष्ट करने के लिये वेद भगवान् ने उपदेश दिया है कि-

त्रयः केशिनः ऋतुथा विचक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम्। विश्वमेकोऽभिच्टे शचीभिः ध्राजिरेकस्य ददृषे ने रूपम्॥

-ऋ.१-१६४-४४।

१) **त्रयः केशिन ऋतुथा विचक्षते**-तीन कारण ऐसे हैं जो कि अपने अपने समय पर विशेष महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं। एक का कार्य दूसरा नहीं कर सकता, दूसरे का कार्य तीसरा नहीं कर सकता, तीनों कारणों को 'केशिनः' कहकर सामान्य नाम से निर्दिष्ट किया गया है; क्योंकि तीनों प्रकाशक-तत्त्वों में कारणत्व रूप प्रकाश समान रूप से विद्यमान है। ये तीन तत्त्व प्रकृति, जीव और ईश्वर हैं। मन्त्र ने इन तीनों का विशेष महत्वपूर्ण कार्य क्रमशः इस प्रकार वर्णन किया है। यथा-

२) **एषां एक-संवत्सरे वपते**-इन तीनों में से एक कारण ऐसा है जो समस्त ब्रह्माण्ड के रूप में वसने योग्य और उत्पन्न होने के योग्य होता है। यह कारण तत्त्व प्रकृति है; क्योंकि वही कार्य रूप सृष्टि बन सकने की योग्यता रखती है। यह योग्यता न तो जीव में है और न ही ब्रह्म में है-जैसे कि घड़ा वनने की योग्यता न तो कुम्हार में है नहीं दण्ड, चक्र, आदि किसी साधन में अथवा घड़े के किसी चाहने वाले ग्राहक में, किन्तु एकमात्र मिट्टी में है।

३) **एकः शचीभिः विश्वम् अभिचष्टें**-एक तत्त्व ऐसा है जो इस संसार के अनेक स्थानों में और अनेक योनियों में भ्रमण करता हुआ अनेक प्रकार के सुख-दुःख वोगों को अनुभव करता है। यह वह तत्त्व है जिसके लिये अनेक प्रकार की सृष्टि की रचना हुई है। इसका नाम जीव है। इसका कार्य न तो जड़ होने के कारण प्रकृति हीकर सकती है और न ही सर्वव्यापक होने के कारण ईश्वर ही कर सकती है और न ही सर्वव्यापक होने के कारण ईश्वर ही कर सकता है। जिस प्रकार ग्राहकों के लिये घड़ा बनाया जाता है, उसी प्रकार यह सृष्टि जीवों के लिये वनाई गई है।

४) **एकस्य ध्राजिः ददृशे रूपं न**-एक तत्त्व ऐसा भी है जिसकी महती शक्ति संसार में सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रही है। परन्तु वह स्वयं नीरूप और निराकार होने के कारण किसी को भी, कहीं भी और कभी भी दृष्टिगोचर नहीं होता। यह तत्त्व ईश्वर है। मन्त्र ने इस तत्त्व को जगत् के कर्ता के रूप में उसी प्रकार वर्णन किया है, जिस प्रकार कि मिट्टी से घड़ा बनाने के लिये

कुम्हार को माना जाता है । मन्त्र में कहा है कि ईश्वर की ध्राजि अर्थात् कला-कौशल की शक्ति सृष्टि में यत्र तत्र सर्वत्र विद्यमान है । जिस प्रकार कुम्हार के कला-कौशल का चातुर्थ घड़े के अन्दर बाहर सर्वत्र विद्यमान है । ठीक उसी प्रकार परमेश्वर का रचना-चातुर्थ सन्सार के प्रत्येक लोक-लोकान्तर में विद्यमान है । भेद केवल इतना है कि घड़े से उसका निर्माता कुम्हार पृथक् देश में अवस्थित है, परन्तु जगत् का निर्माता परमेश्वर जगत् से पृथक् किसी अन्य स्थान में अवस्थित नहीं है, अपितु कार्यमात्र के अन्दर बाहर सर्वत्र विद्यमान है ।

इस त्रैतवाद का वर्णन ऋग्वेद के नासदीय सूक्त तथा पुरुष सूक्त आदि कई स्थानों में भी विस्तृत रूप से किया गया है । ऋग्वेद का वह प्रसिद्ध मन्त्र सभी को स्मरण होना चाहिये, जिसमें ईश्वर और जीव को दो चेतन पक्षियों के रूप में तथा जगत् के उपादान प्रकृति तत्त्व को वृक्ष के रूप में वर्णन करके स्पष्ट ही त्रैतवाद को प्रतिपादित किया है । मन्त्र इस प्रकार है-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यन-श्नन्नन्योऽभिचाकशीति ॥

इस मन्त्र में द्वौ आदि कई शब्दों में द्विवचन का प्रयोग करके तथा 'तयोः, अन्यः' और पुनरपि अन्यः शब्दों का निर्दस करेक वेद ने स्पष्ट कह दिया है कि एक कारण वाद सर्वथा युक्ति-विरुद्ध, तर्क रहित तथा वेद-प्रतिषिद्ध है ।

यजुर्वेद का चालीसवां अध्याय वेद का अन्तिम भाग होने के कारण 'वेदान्त' के रूप में सन्सार में प्रसिद्ध है । वेद के दार्शनिक सिद्धान्त भी इस अध्याय में संक्षिप्त रूप से वर्णन कर दिये गये हैं । पहला मन्त्र ध्यान देने योग्य है । यथा-

ईशा वास्यमिदꣳसर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् । तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥

पहली बात ईश्वर के विषय में यह कही है कि इदं सर्व ईश आवास्यम्-यह जो कुछ भी है, सबका सब ईश्वर से आच्छाति है । ऐसा कहने से वेद दो तत्त्वों की ओर संकेत कर रहा है । एक तत्त्व वह है, जिसको "इदं सर्व" से अच्छाद्य अथवा व्याप्य रूप में कहा गया है

...पृ. १५ का शेष.

प्रचालित हुआ है ।

२) **इन्द्रो मायाभिः पुरु रूप ईयते-** यहाँ-जहाँ कुशलता, निपुणता, चालाकी जैसे गुण/खूबियाँ/अर्थ सामने आते हैं । हाँ, प्रकृति भी संगत हो सकती है । यतो हि **इन्द्र**=राजा/प्रभु/सामर्थ्यवान पुरु रूप बहुल/=पैलाव वाला/सफल/वृद्धिवाला जहाँ योग्यता से होता है, वहाँ प्रसार के लिए भौतिक वस्तु/कच्चामाल/मैटर भी चाहिए । जैसे कुम्हार (प्राजापत) प्रजापति मिट्टी रूपी धातु को अनेक रूप देता है । ऐसा करने की उसमें कला, होशियारी भी होनी चाहिए ।

३) नवीन वेदान्त में माया को कल्पित, अनित्य, स्वप्नवत्, झूठा, मायावी, 'माया महा ठगनी' -अनिर्वचनीय (जिसको स्पष्ट, एकरूप में सुनिश्चित अर्थवाली नहीं कहा जा सकता, यह अनेक अर्थयुक्त है । (वस्तुतः आज का 'कोरोना' रोग अनिर्वचनीय है । इसके होने के कारण, लक्षण, औषध आदि अस्पष्ट हैं)

नवीन वेदान्त में तीन सत्ताएँ पारमार्थिक सत्ता, व्यावहारिक सत्ता, प्रातिभासिक सत्ता मानी जाती हैं । हाँ, व्यावहारिकता के आधार पर ही प्रतिदिन की आशंकाओं का समाधान समझाया जाता है ।

हमारे शास्त्रों में जहाँ माया शब्द का विशेषतः विवेचन हुआ है, वहाँ सामान्य जनता की भाषा में भी माया शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है । जैसे कि

१) प्रभु की माया । =रचना, कला)

२) माया की माया । =धन का प्रभाव, असर

३) मायावी=धोखा देने वाला, ठगने वाला, रूप बदलने में कुशल

४) मेहनत की माया । परिश्रम का परिणाम

श्रम का फल आज हम अपने चारों ओर प्रभु की माया के रूप में जहाँ प्राकृतिक पदार्थों/भौतिक जगत् से लाभ लेरहे हैं, वहाँ मनुष्यों की **'मनुष्य की माया'** के कारण ही भोज्य-पेय पदार्थों, वस्त्रों का अम्बार, वर्तनों का भण्डार, आवास के साधन प्राप्त कर रहे है । यहाँ जहाँ कुशलता, निपुणता चालाकी जेसे गुण, खूबियां अर्थ भी सामने आते है । हाँ, प्रकृति भी संगत हो सकती है ।

माया शब्द के अन्य अर्थों की अपेक्षा प्रस्तुत प्रसंग में माया शब्द का उपयुक्त, सार्थक अभिप्राय **'कर्मफल व्यवस्था'** ही हो सकता है । तुलनात्मक विचार से यह अर्थ अतन्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है । यतो हि गीता (२,४७) में **'कर्मण्येव अधिकारः ते, मा फलेपु कदाचन'** अर्थात् संसारी व्यक्ति (जीव) को केवल और केवल कर्म करनेकी ही स्वतन्त्रता है । कर्म करने के पश्चात् कर्म का फल कब, कैसा, कितना किस रूप में होगा ? यह सारी कर्मफल की व्यवस्था जीव की अपेक्षा कर्मफल व्यवस्था के व्यवस्थापक ईश्वर के हाथ में है । कर्मफल प्रदाता परमेश्वर पूर्णतः सर्वव्यापक होने से कर्मफल के सम्बन्ध में सर्वद्रष्टा तथा सर्वज्ञ है । उसके लिए कुछ भी अप्रत्य नहीं है । वह न्यायकारी सर्वथा पक्षपात रहित है । अतः वहकर्म के अनुरूप ही कर्मों के कर्त्ता को फल देता है । तभी तो गाया जाता है **जैसा कर्म करे-वैसा फल दे भगवान** । यह है गीता का ज्ञान । यही निष्कर्ष है-सार है सिद्धान्त है । अतः कर्मों के आधार पर ही आवागमन की पूरी व्यवस्था चलती है ।

ఆర్య జీవన్ పాఠకులకు

ఆర్య జీవన్ పాఠకులు తమ వ్యాసాలు, జ్ఞాపకాలు, సంకనాలు, అనువాద రచనలు, జ్ఞాన కథలు, కవితలు, ఆర్య ప్రపంచ విశేషాలు మొదలైన వాటిని హిందీ మరియు తెలుగులో పత్రికలో ప్రచురించ డానికి పంపవలసిందిగా కోరుతున్నాము. అయితే అదే సమయంలో, వారు క్రింది క్రింది నియమాలను కూడా అనుసరించాలి :

1. వ్యాసాలు మొదలైనవి ఆర్య సూత్రాలపై ఉండాలి.
2. ప్రచురణకు సంబంధించి మెటీరియల్‌ను స్పష్టమైన అక్షరాలతో వ్రాసి టైప్ చేయాలి
3. భాష సరళంగా మరియు అర్థమయ్యేలా ఉండాలి.

మన పిల్లల చదువు

తెలుగు అనువాదం :
ఆచార్య అరవింద్ శాస్త్రి

మంచి గృహాన్ని నిర్మించడానికి ఏ విధంగా సుదృఢమైన పునాది అవసరమో అదే విధంగా ఆరంభము నుండే పిల్లలను సుశిక్షితులుగా తీర్చిదిద్దే ప్రయత్నము జరుగవలెను. ఎవరైతే వారి సంతానము యొక్క విద్య కొరకు ప్రబంధము చేయరో వారు ఇసుకపై మేడ కట్టాలను కొంటారు. ఒకసారి చెడు గుణాలు పిల్లలలో ప్రవేశించినచో దాని ప్రభావము పిల్లలో మరణ పర్యంతము ఉంటుంది. అందుకే ఈ విధంగా చెప్పబడినది-

"గర్భా ధానము మొదలు కొని విద్య పూర్తయ్యే వరకు సంతానానికి సుశీలత యొక్క ఉపదేశము నిచ్చే తల్లి ధన్యురాలు".

పిల్లల యొక్క విద్య బాధ్యత ముగ్గురు వ్యక్తులపై ఉన్నది. వరు తల్లి, తండ్రి మరియు ఆచార్యులు. పిల్లలను దుష్ట గుణములు, దుష్ట స్వభావము మరియు దుష్ట కార్యముల నుండి తప్పించే ప్రయత్నము చేయనిచో ఆ జాతి యొక్క ఉన్నతి కాజాలదు. సత్యార్థ ప్రకాశములో ఈ విధంగా చెప్పబడినది.

"బాలకులకు తల్లి ఎల్లప్పుడు ఉత్తమ విద్య నేర్పవలెను. తద్వారా సంతానము సభ్యతతో వ్యవహరిస్తూ ఏ అంగముతో కూడా కుచేష్ట చేయ కూడదు. మాట్లాడటము మొదలు పెట్టినప్పుడు తల్లి బాలకుని నాలుకతో కోమలముగా స్పష్టమైన ఉచ్చారణ చేయగలిగే ఉపాయమును పాటించ వలెను. వర్ణము యొక్క స్థానము మరియు ప్రయత్నము ఉదాహరణకు "ప"కు ఓష్ఠము (పెదవులు)యీ స్థానము మరియు స్పష్ట ప్రయత్నము రెండు పెదవులను కలిపి చెప్పుట. హ్రస్వము, దీర్ఘము, ప్లుతము మొదలగు వాటిని సరిగ్గా ఉచ్చారింప జేయవలెను. మధురము, గంభీరము, సుందర స్వరము, అక్షరములు, మాత్రాలు, పదములు (వాక్యములు) సంహితా, అవసానము వేర్వేరుగా వినిపించవలెను. అతడు కొంచెము మాట్లాడుటు, అర్థము చేసి కొనుట మొదలు పెట్టినప్పుడు సుందర వాణి, పెద్ద-చిన్న, మాన్యులు, తండ్రి-తల్లి, రాజు, విద్వాంసుడు మొదలైన వారిచే వ్యాఖ్యానములు వినిపించుట, వారితో వ్యవహారము, వారి వద్ద కూర్చునే విధానము మొదలైన సభ్య విధానాలు నేర్ప వలెను. తద్వారా వారి వ్యవహారము అయోగ్యమైనది కాకుండా అతని ప్రతిష్ట అంతటా వ్యాపించునట్లు ఉండవలెను. సంతానము జితేంద్రియులు, విద్యా ప్రియులు మరియు సత్సంగము పట్ల రుచి కలిగి యుండునట్లు ప్రయత్నము చేస్తూ ఉండ వలెను. వ్యర్థ క్రీడ, రోదనము (ఏడ్చుట), హాస్యము, కొట్లాడుట, హర్షము, శోకము, ఏదో ఒక పదార్థము పట్ల వాంఛ, ఈర్ష్యా, ద్వేషాదులు చేయ కూడదు. ఉపస్థేంద్రియము యొక్క స్పర్శ చేయరాదు. ఎల్లప్పుడు సత్య భాషణము, శౌర్యము, ధైర్యము, ప్రసన్న వదనము మొదలైన గుణములను వీలైనంత వరకు ప్రాప్తించు కొన వలెను. బాలుడు, బాలిక ఐదు సంవత్సరముల వయసు పొందినప్పుడు వారికి దేవనాగరి అక్షరముల భాషల అక్షరములు కూడా నేర్ప వలెను. ఆ తర్వాత మంచి విద్య, శిక్షణ, ధర్మము, పరమేశ్వరుడు, తల్లిదండ్రులు, ఆచార్యులు, విద్వాంసులు, అతిథి,రాజు ప్రజలు, కుటుంబము, బంధువులు, అక్క చెల్లెండ్లు, పనివాడు మొదలైన వారితో ఎట్లు వ్యవహరించాలో నాటికి సంబంధించిన మంత్రములు, శ్లోకాలు, సూత్రాలు, గద్య పద్యములను అర్థసహితముగా కంఠస్థము చేయించ వలెను. తద్వారా సంతానము ధూర్తుల దుష్ట ప్రేరణకు గురి కాకుండా ఉండాలి. అంతేగాక విద్యా ధర్మ విరుద్ధమైన భ్రాంతి జాలములో పడకుండా ఉండే వ్యవహార విద్యలను కూడా ఉపదేశాచి భూత, ప్రేతములు మొదలగు మిథ్యా భావాలను విశ్వసించ కుండా ఉండునట్లు చూడవలెను.

గురో ప్రేతస్య శిష్యస్తు పితృమేధం సమాచరన్।
ప్రేతహారైః సమం తత్ర దశ రాత్రేణ శుధ్యతి ॥
-మను. అ. 5/65

అర్థము : గురువు యొక్క ప్రాణము అంతమైనప్పుడు ఆ సతీరమును ప్రేత మందురు. దానిని దహనముచేయు శిష్యుడు శవము నెత్తిన వారితో సహ పదవ రోజు శుద్ధుడు ఔతాడు. శరీరము దహనమైన పిమ్మట అది భూతమనబడును. అనగా అతడు ఫలానే పేరుగల వాడై ఉండెను. ఉత్పన్నమైన వీరందరు వర్తమానములో ఉండి తరువాత లేనిచో వారు భూత కాలమునకు చెందిన వారగుటచే భూతములనబడుదురు.

ఈ విధంగా బ్రహ్మ మొదలుకొని నేటి వరకు ఇదియే విద్వాంసుల సిద్ధాంతము. కాని ఎవరికైతే సంశయము, కుసంగతి, కుసంస్కారములు ఉంటాయో వారికి భయము, భ్రాంతిరూపములో భూత, ప్రేత, శాకినీ, డాకినీ మొదలైన అనేక భ్రమ జాలములు దుఃఖ దాయమవుతాయి.

చూడండి ! ఒక ప్రాణి మరణించినప్పుడు, ఆ జీవి తన పాప, పుణ్య కారణములకు వశుడై పరమేశ్వరుని వ్యవస్థలో సుఖ, దుఃఖముల ఫలములను భోగాచుటకు ఇంకొక జన్మను ధరిస్తాడు. ఈ విధానంలో ఎవరైనా అవినాశి పరమేశ్వరుని వ్యవస్థను నష్ట పరుచ గలవాడె అజ్ఞాన వ్యక్తులు వైద్య శాస్త్రము, పదార్థ విద్యను చదవని వారు, వినని వారు ఆలోచనా రహితులై సన్నిపాత జ్వరము, శారీరక మరియు ఉన్మాదము మొదలగు మానసిక రోగముల పేర్లు భూత ప్రేతాదులుగా వర్ణిస్తారు. వాటికి సంబంధించిన ఔషధ సేవనము, పద్యము పాటించి ఉచిత వ్యవహారము చేయక ధూర్తులు, పాఖండులు, మహా మూర్ఖులు, అనాచారులు, స్వార్థులు, భంగి చర్మ కార శూద్రులు, మ్లేచ్ఛులు మొదలగు అనేక రకములైన కపటులు, ఛలము చేయు వారు, ఉచ్చిష్టి బోజనము మొదలగు వారిచే 'మౌలి (బోతులకు వ్రత సూత్రములు కట్టుట) సూత్రములను, మంత్ర యంత్రములు, తామెత్తులు కదుతూ, కట్టించు కొంటూ ఇటు నటు తిరుగు చుందురు. తమ ధన నాశనముతో పాటు సంతానాదులు దుర్దశ, రోగములను పెంచుచు చరించు చుందురు.

కన్నులుండీ గుడ్డివారై, చెవులుండీ చెవిటి వారైన దుర్బుద్ధులు, పాపులు, స్వార్థ పరుల వద్దకు వెళ్ళి ఈ విధంగా అడుగు. తీరు- మహారాజా ! ఈ బాలుడు, బాలిక, స్త్రీ మరియు వీరి శరీరము లోనికి పెద్ద భూతము, ప్రేతము, బైరవుడు, శీతలా దేవతలు ప్రవేశించారు. దీని కొరకేదైనా ఉపాయముచేయనిచో, ఈ దుష్ట శక్తులు వారిని విడిచి పెట్టవు, ఇంకా ప్రాణాలు కూడా హరిస్తాయి. మీరు గోధుమ పాయసము లేక కొంత డబ్బు చెల్లించు కున్నచో మేము మంత్ర, జప, పరశ్చరణచే చీపుతో ఇతని దేహాన్ని ఝూడించి వాటిని తరిమి వేస్తాము". అప్పుడు ఈ భోళా మనుషులు, వారి సంబంధీకులు ఈ విధంగా

అంటారు- "మహారాజ్ ! మా సర్వస్వము పోయినా సరే ఇతనిని బాగు చేయుము". అనగానే వీరి పంట పండుతుంది. "సరే ఇంత సామాగ్రి, వస్తువులు, దక్షిణ, దేవతలకు ముడుపులు, గ్రహదానము చేయించండి". ఈ విధంగా చెప్పి శంకము, మృదంగము, డోలు, తాంబాళములను వేయించుచు వధి ముందు పాడుతూ ఉంటారు. ఇంతలో ఒక పాఖం డుడు ఉన్మత్తుడై ఆడుతూ, దూకుతూ ఈ విధంగా హుంకరిస్తాడు "నేను ఇతని ప్రాణాన్ని హరిస్తాను". అనగానే ఈ ఆంధులు ఆ భంగీ, చర్మకారులు కొళ్ళపై పడి ఈ విధంగా వేడు కుంటారు- "మీకు తోచినంత తీసుకొండి. ఇతనిని రక్షించండి" అనగానే ఆ ధూర్తుడు ఈ విధంగా అంటాడు- "నేను హనుమంతుడిని, మంచి మిఠాయి తిండి నూనే, సిందూరము, ఎనిమిదింబావు సేర్ల రొట్టెలు, ఎఱ్ఱ లంగోటీ. నేను దేవీని. నేను బైరవుణ్ణి, తెండి ఐదు సీసాల మద్యము, ఇరవై కోళ్ళు, ఐదు మేకలు, మిఠాయి ఇంకా వస్త్రములు" అనగానే అంధ భక్తులు "ఏమైనా తీసుకొండి" అనగానే ఆ ఉన్మత్తుడు బాగా ఆడడము, పాడడము మొదలు పెడతాడు. కాని ఒక బుద్ధిమంతుడైన వాడు ఈ ధూర్తు లను ఐదు చెప్పు దెబ్బలు కొట్టి, కర్రతో వేయించి, బాగా తన్నులు తగిలిస్తే వాడిని అవహించిన దేవి, బైరవుడు తక్షణమే ప్రసన్నులై పారి పోతారు. ఎందుకనగా ఈ ధూర్తులు కేవలము ధనాదులను హరించే బుద్ధితో నాటకాలు వేషాలు వేస్తారు.

గ్రహాశ్రస్తులు, గ్రహ రూపులు, జ్యోతిర్విద్య తెలిసిన వారిగా కనిపించే వారినిచేరి జనులు "హే మహారాజ్ ! ఇతనికేమైనది ?" అన్న ప్పుడు వారింటారు- "ఇతనిపై సూర్యాది క్రూర గ్రహములు ఆవహించినవి. దీని కొరకు శాంతి పాఠ పూజ చేయించినచో ఇతడు సుఖము పొందగలడు. లేనిచో చాలా పీడకు లోనై చని పోయినా ఆశ్చర్యము లేదు" మీరు చెప్పండి. ఏ విధంగా ఈ భూమి జడ మైనదో అదే విధంగ సూర్యదిలోకాలు కూడా ఉన్నాయి. అవి వేడిమి, ప్రకాశము ఇవ్వడము తప్ప వేరే ఏమీ చేయలేవు. క్రోధానికి లోనై దుఃఖము, శాంతమైన తరువాత సుఖమివ్వడా నికి అవి చేతన శక్తి కలిగి ఉన్నాయా ?"

ప్రశ్న :- ఈ ప్రపంచములో రాజు, ప్రజలు సుఖ, దుఃఖముల ననుభవించు చున్నారు. ఇది గ్రహముల ఫలము కాదా ?

జవాబు :- కాదు. ఇవన్నీ పాప పుణ్యముల ఫలములు.

ప్రశ్న :- అయితే జ్యోతిష శాస్త్రము అబద్ధమా ?

జవాబు :- కాదు. అందులో ఉన్న అంక బీజ, రేఖా గణిత విద్యలు యదార్థమైనవి. ఫలమునకు సంబంధించిన లీలలు అబద్ధమై నవి.

ప్రశ్న :- ఈ జన్మ పత్రము కూడా నిష్ఫల మేనదా ?

జవాబు :- అవును అది జన్మ పత్రముకాదు. దానికి "శోక పత్రము అని పేరు పెట్ట వలెను. ఎందుకనగా సంతానము కలిగినప్పుడు అందరికి ఆనందమగుతుంది. కాని ఆ ఆనందము జన్మ పత్రము తయారై గ్రహముల ఫలమును వినినంత వరకే ఉంటుంది. జన్మ పత్రము తయారు చేయుటకు పురోహితుడు ఒప్పు కొన్నప్పుడు ఆ తల్లిదండ్రులు పురోహి తునితో ఈ విధంగా అంటారు. "మహారాజ్ మీరు చాలా మంచి జన్మ పత్రము తయారు చేయండి. ధనాధ్యులైనప్పుడు చాలా రకము లైన ఎరుపు, పసుపు రేఖలతో చిత్ర- విచిత్ర మైన రేఖలతో, నిర్ధనులైనపుడు సాధారణ పద్ధతిలో సిద్ధము చేయుట జరుగుతుంది. తల్లిదండ్రులా జ్యోతిషున్ని "మా వాడి జన్మ పత్రము బాగానే ఉంది కదా ?" అని అడుగు తారు. "ఏదున్నదో అది వినిపిస్తాను" అని జ్యోతిష్యుడంటాడు. ఇతని జన్మ గ్రహము బాగున్నది. దాని ఫలములు నాధ్యము, ప్రతి ష్ఠావంతములు. ఏ సభలోకి వెళ్ళి కూర్చుం టాడో అందరిపై అతని తేజస్సు పడుతుంది. శరీరము ఆరోగ్యముతో రాజ్యమాన్యు డై ఉంటాడు". ఈ మాటలను విని తండ్రి తదితరులు ఈ విధంగా అంటారు. "ఆహా ! ఆహా ! జ్యోతిషీ గారూ మీరు చాలా మంచి వారు".

జోతిషీజీకి అర్థమవుతుంది. ఈ మాట లతో కార్య సిద్ది జరగదని అతడు వారితో అంటాడు "ఈ గ్రహములు చాలా బాగున్నవి. కాని ఈ గ్రహములు క్రూరమైనవి. అనగా ఫలానా ఫలానా గ్రహ యోగముతో ఎనిమిది సంవత్సరములలోనే ఇతనికి మృత్యువు యోగ మున్నది". ఇది విని తల్లిదండ్రులు పుత్ర జన్మము యొక్క ఆనందమును విడిచి శోక సాగరములో మునిగి పోయి జ్యోతిష్యునితో అంటారు" మహారాజ్ మేమిప్పుడు ఏమి చేయాలి". అప్పుడు జ్యోతిష్యుడంటాడు "ఉ పాయము చేయండి". గృహస్థులడుగుతారు "ఏమి ఉపాయముచేయాలి ?" జ్యోతిష్యుడు ప్రస్తావన చేయడం ప్రారంభిస్తాడు "ఈ విధంగా దానం చేయండి. గ్రహమంత్రములను జపింప జేయండి. నిత్యము బ్రాహ్మణులకు బోజనముచేయించండి. అప్పుడు బహుశా నవగ్రహాల విఘ్నము తొలగి పోతుంది. "బహుశా" అనే పదాన్ని వీరు ఎందుకు వాడతారంటే ఒకవేళ చనిపోతే "మేమేమి చేయగలము ? పరమేశ్వరుని కంటే అధికులెవరు లేరు. మేమూచాలా ప్రయత్నము చేశాము. మీరు చేయించారు. అతని కర్మలో ఇంతే ఉండినది." ఒకవేళ బ్రతికి పోయినచో "చూడండి మా మంత్ర దేవత, బ్రాహ్మణుల శక్తి ఎంత ఉన్నది ? మీ కుమారుని బ్రతికించాము". కాని నిజానికి వ్యవహారమెలా ఉండాలంటే వీరి జపపాఠముతో ఏమీ జరగనిచో రెండు లేక మూడింతల ధనము ఈ ధూర్తుల నుండి లాగు కొనవలెను. ఒకవేళ బ్రతికినచో అప్పుడూ కూడా ధనము వారి నుండి వెనక్కితీసుకోవాలి. ఎందుకంటే జ్యోతిష్యులన్నట్లు "ఇతని కర్మ మరియు భగవంతుని నియమములను ఛేదాచే సామర్థ్యము ఎవరికీ లేదు" కాబట్టి నిజానికి గృహస్థులు కూడా "ఇతడు తన కర్మ మరియు పరమేశ్వరుని నియమముచే బ్రతికాడు. మీరు చేయడం వల్ల కాదు'' అని అనాలి. ఇతరగురువులుకూడా ఈ విధంగపుణ్య దానములను స్వీకరిస్తారో వారికి కూడా జ్యోతిష్యునికి చెప్పినట్లే జవాబు చెప్పాలి.

ఇక మిగిలినవి శీతలా మరియు మంత్ర తంత్రములు. వీరు కూడా ఈ విధంగానే మాయ చేస్తారు. ఒకడంటాడు "మేము మంత్రము చదివి సూత్రము లేక యంత్రము చేసినచో మా దేవతలు, పీర్లు ఆ మంత్ర తంత్రముల ప్రభావముతో అతనికి ఏ విఘ్నమూ కలుగకుండ చూస్తారు". వారికి అదే విధంగా జవాబు చెప్పాలి. "మీరు మృత్యువు, పరమేశ్వరుని నియమము మరియు కర్మతో అతనిని రక్షించగలరా ? మీరు ఈ విధంగా చేసినప్పుడు ఎంతో మంది పిల్లలు చచ్చి పోతుంటారు. మీ ఇంట్లో కూడా చచ్చి పోతారు. ఏమి ? మీరు మరణము నుంచి రక్షించ గలరా ?" అప్పుడు వీరు ఏమీ చెప్పలేరు. ఇక్కడ మీ పప్పులుడకవని తెలుసు కొంటారు. కాబట్టి ఇటువంటి అన్ని

మిథ్యా వ్యవహారములను మానుకొని ధార్మికము, అన్ని దేశముల ఉపకారార్థము, నిష్కపట భావముతో అందరికీ విద్య నేర్పే గురువులను, ఉత్తమ విద్వాంసులకు ప్రత్యుపకారము చేయవలెను. వారెట్లు జగత్తునకు ఉపకారము చేయుదురో అలాంటి కార్యాన్ని ఎప్పుడూ విడువ రాదు. ఏవైతే మాయాలీలలు, మారణము, మోహనము, ఉచ్చాటనము, వశీకరణము మొదలైన వాటి గురించి చెప్పే వారిని మహా పామరులుగా గుర్తించ వలెను. ఇటువంటి జాగ్రత్తతో కూడిన వచనములను సంతానము యొక్క హృదయములో కలిగించాలి. అందువలన మన సంతానము ఎవరి భ్రమ జాలములో పడి దుఃఖించ గూడదు. వీర్య రక్షణలో ఆనందానుభూతిని పొందాలి. వీర్య నాశనము చేసుకొని దుఃఖముల పాలవ కూడదు. ఈ విషయాన్ని కూడా సంతానానికి స్పష్ట పరచాలి. చూడండి ! ఎవరి శరీరములో వీర్యము సురక్షితముగా ఉంటుందో వారికి ఆరోగ్యము, బుద్ధి, బలము, పరాక్రమము వృద్ధి చెంది చాలా సుఖ ప్రాప్తి కలుగుతుంది. దీని రక్షణా విధానము ఎలాంటిదంటే "విషయము తేగాక, విషయలోలుర సంగతి, విషయముల ధ్యానము, స్త్రీ దర్శనము, ఏకాంత సేవనము, సంభాషణ, స్పర్శ మొ॥ క్రియలతో బ్రహ్మచారులు వేరుగా నుండి ఉత్తమ శిక్ష, పూర్ణ విద్యను ప్రాప్తించు కొనవలెను. ఎవరి శరీరములో వీర్యముండదో అతడు నపుంసకుడు, కులక్షణుడు అగుతాడు. ఎవరికైతే ప్రమేహ రోగము ఉంటుందో వారీ దుర్బలురు, నిస్తేజ, నిర్బుద్ధి, మాది గుణరహితులై నష్టమై పోతారు. మీరు సుశిక్ష, విద్యాగ్రహణము, వీర్య రక్షణ చేయుట కొరకు ఈ సమయాన్ని కోల్పోతే తిరిగి ఈ జన్మలో మీకు ఈ అమూల్య సమయము లభించ జాలదు. గృహస్థ కర్మలు చేస్తూ మీకు సహకరించే వారు జీవించి ఉన్నంత వరకే మీకు విద్యా గ్రహణము, శరీర బలములను పెంచు కొనవలెను. ఇదే ప్రకారమైన అన్య శిక్షణలను మాతాపితరులు పాటించ వలెను. జన్మ మొదలుకొని 5 సంవత్సరముల వరకు తల్లి, 6 నుండి 7వ సంవత్సరము వరకు తండ్రి విద్యా బుద్ధులు నేర్ప వలెను. 9వ సంవత్సరపు ఆరంభము నుండి ద్విజుడు (బ్రాహ్మణుడు) తన సంతానమునకు ఉపనయన సంస్కారము చేయించి ఆచార్య కులములో అనగా ఎక్కడ పూర్ణ విద్వాంసులు, పూర్ణ విదుషీ స్త్రీలు శిక్షణ, విద్యాదానము చేస్తారో, అక్కడికి తమ బాలురు, బాలికలను పంప వలెను. శూద్రాది వర్ణముల వారికి ఉపనయనము చేయకనే విద్యాభ్యాసము కొరకు గురు కులానికి పంప వలెను. ఎవరైతే చదివించుటలో లాలనము (బుజ్జగింపు) చేయకుండా తాడనము (చదవనిచో దండించుట చేస్తారో వారిసంతానమే విద్వాంసులు, సభ్యులు సుశిక్షితులు అగుతారు. ఇందులో వ్యాకరణ, మహాభాష్య ప్రమాణమున్నది.

సామృతైః పాణభిగ్ర్నాంతి గురువోన విశోక్షితైః । తాలనాశ్రయిణోదోషాస్తాద నాశ్రయిణో గుణాః ॥ —అ.7-1-7

అర్థము : ఏ తల్లిదండ్రులు, ఆచార్యులు తమ శిష్యులను దండిస్తారో వారుతమసంతానానికి, శిష్యులకుతమ చేతులతో అమృత పానము చేయించు చున్నట్లుగా తెలుసు కొనగలరు. ఏ తల్లిదండ్రులు తమ సంతానాన్ని బుజ్జగిస్తారో వారుతమసంతానానికి, శిష్యులకు విషము త్రాగించి నష్ట భ్రష్టులను గావించినట్లు ఎంచ వలెను.ఎందుకనగా లాలనచే సంతానము, శిష్యులుదోష యుక్తులు, దండనచే గుణ యుక్తలగుదురు. శిష్యులు కూడా ఎల్లప్పుడు దండనచే ప్రసన్నులు, లాలనచే అప్రసన్నులుగా వవలెను. కాని తల్లిదండ్రులు, అధ్యాపకులు ఈర్ష్య ద్వేషములచే దండించ కూడదు. వారు పై నుండి భయప్రధానముగా, మనసు లోపల పిల్లల పట్ల కృపా దృష్టి కలిగి యుండాలి. ఉదాహరణకు దొంగతనము, ఆలస్యము, ప్రమాదము, మాదక ద్రవ్య సేవనము, మిథ్యా భాషణము, హింస, క్రూరత్వము, ఈర్ష్యా, ద్వేషము, మోహము మొదలైన వాటిని విడిచి పెట్టుటకు మరియు సత్యాచార గ్రహణము కొరకు ఉప దేశించాలి. ఎందుకనగా ఎవడైతే ఇంకొకని ముందు ఒకసారి దొంగతనము, అబద్ధమాడుట వంటి కర్మలుచేసినచో వాడి ప్రతిష్ట మృత్యు పర్యంతము ఎదుటి వానిలోకలుగదు. ఎంత హాని మిథ్యా ప్రతిజ్ఞ చేసిన వానికి కలుగుతుందో అంత హాని ఇంకెవరికి కల గుదు. అనగా ఎవరితో ఏ ప్రతిజ్ఞ చేస్తే దానిని అట్లే పూర్తి చేయాలి. ఉదాహరణకు– "నేను నీతో లేక నీవు నాతో ఫలానా సమయంలో కలుస్తాను లేక కలవాలి. అదే విధంగా ఫలానా వస్తువును ఫలానా సమయంలో నేను ఇస్తాను" అనే ప్రతిజ్ఞలను అలాగే పూర్తి చేయాలి. లేనిచో వాని నెవడూ గౌరవించడు. అందుకే ఎల్లప్పుడూ సత్య భాషణము మరియు సత్య ప్రతిజ్ఞా యుక్తులగుట అందరికి ఉచితము. ఎవ్వరూ అభిమాన బుద్ధిని కలిగి యుండ రాదు. ఛల, కపటము, కృతఘ్నతతో మన హృదయమే దుఃఖితమైనప్పుడు వేరే వారి గురించి బయట మరొక విషయము కలిగి ఇతరులను మోహములో పడ వేయుట, ఇతరుల హాని పట్ల ధ్యానము నీయక స్వార్థ సిద్ధిచేసు కొనుట. "కృతఘ్నత" అనగా ఇతరులు మనకు చేసిన మేలును మరచి పోవుట. క్రోధాది దోషములను వీడి, కటు వచనములను వదిలి పెట్టి శాంతము, మధుర వచనములనే పలుక వలెను. గప్పాలు కొట్ట రాదు. ఎంత అవసరమో అంతే మాట్లా డాలి. అంత కంటే ఎక్కువ గాని, తక్కువ గాని మాట్లాడ రాదు. పెద్దలను గౌరవించ వలెను. ఎదురుగా వెళ్ళి వారిని ఉచ్చాసన ముపై కూర్చుండ బెట్ట వలెను. మొదట నమస్కారము చేయవలెను. వారి ముందు ఉత్తమాసనముపై కూర్చుండ రాదు. సభలో తనకు యోగ్యమైన స్థానములో కూర్చుండ వలెను. ఇతరులు తనను లేపని స్థానంలో కూర్చోవాలి. ఎవరితో విరోధము పెట్టు కోకూడదు. సంపన్నుడై గుణగ్రహణము మరియు దోషములను త్యజించవలెను. సజ్జనుల సంగతి, దుష్టులకు దూరముగా ఉండవలెను. తన తల్లిదండ్రులు, ఆచార్యులను తనువు, మనస్సు మరియు ధనాధి ఉత్తమో త్తమ పదార్థములతో ప్రీతి పూర్వకముగా సేవించవలెను.

యాన్యస్మాకం సుచరితాని తాని త్వయో పాస్యాని నోఇతరాణి ॥–తైత్తి. ప్రా. 7/అను॥

దీని అభిప్రాయమేమనగా తల్లి–తండ్రి, ఆచార్యులు తమ సంతానమునకు, శిష్యులకు ఎల్లప్పుడు సత్యపదేశము చేయవలెను. ఇంకా వారికి ఈ విధంగా భోధన చేయాలి. "ఏఏ దుష్టకర్మలున్నవో వాటిని త్యాగము చేయుము. దేనిని సత్యమైనదని తెలుసుకొంటావో దానిని ప్రకాశ పరచుము, ప్రచారము చేయుము. పాఖండులు, దుష్ప్రచార మనుష్యలను విశ్వసించకు. ఏయే ఉత్తమ కార్యాలను చేయుమని తల్లి, తండ్రి, ఆచార్యులు ఆజ్ఞాపించినచో వాటిని శక్తి వంచన లేకుండా పాటించ వలెను. ఉదాహరణకు తల్లిదండ్రులు ధర్మ విద్య, మంచి ఆచరణకు సంబంధించిన శ్లోకములు, "నిఘంటు" "నిరుక్తము" "అష్టాధ్యాయ" ఇంకా ఇతర సూక్తులు, వేదమంత్రములు కంఠస్థము చేయించ వలెను. తిరిగి

...శేషము 22వ పేజీ లోన

అసహాయులకు ఈశ్వరుడే సహాయకుడు

హిందీ మూలం :
బ్ర. సత్యశ్రవా చైతన్య

తెలుగు అనువాదం :
ఆచార్య అరవింద్ శాస్త్రి

ఈ ఆర్యావర్తములో ప్రజలంతా యథార్థమైన సత్యాసత్యములను గ్రహించుటలో అసమర్థులై యున్నారు. సత్యవిద్య (వేదవిద్య) నశించి. పోవుట దీనికి ముఖ్య కారణము. దాని మూలమున అవిద్య అంతటా వ్యాపించు చున్నది. ఎన్నో మత, మతాంతరములు విస్తరించినవి. దానితో పాటు అనేక దేవీ-దేవతల పూజ కొనసాగుచున్నది. సత్య స్వరూపుడైన ఈశ్వరుని మరచి పోవుచున్నారు. తత్కారణముగా ప్రస్తుతము ఈ జగత్తు అందరూ దుఃఖ సాగరములో మునిగి తేలు చున్నారు. సుఖ శాంతులను అనుభవించ లేక పోవుచున్నారు. చిన్న పిల్లలకు దుఃఖము కలిగినచో వారి తల్లిదండ్రులు వారి బాధలను నివారించి వారికి సుఖాన్ని ప్రసాదిస్తారు. కాని జగత్తులో అందరూ దుఃఖితులైతే ఆ బాధలను ఎవరు నివారించగలరు ? సుఖాన్ని ప్రాప్తింపజేయువాడు ఒక్కడే. అతడే పరమాత్ముడు. అతడు సుఖ సాగరుడు. ఈ విషయాన్ని ఇంకా విశదంగా తెలుసుకుందాము. మీరొక్కసారి గమనించండి ప్రపంచములో అందరూ ఎందుకు భాధలననుభవించుచున్నారు ? పేదరికము, అవిద్యాదుల కారణంగా దుఃఖితులై యున్నారు. అందులో కొందరు పేద వారు కారు, కోటీశ్వరులు వారు కూడా దుఃఖములో నున్నారు. మరికొందరు అవిద్యావంతులు కాదు, చదువు కొన్నవారే. వారు కూడా దుఃఖితులై యున్నారు.

విజ్ఞానము ప్రతిసారీ ఏదో క్రొత్త-క్రొత్త ఆవిష్కారాలు చేస్తూ ఉంటుంది. పరమాణు ఆయుధాలు, హైడ్రోజన్ బాంబులు మొదలైనవి తయారు చేయబడతాయి. విజ్ఞానము ఒక్కసారైనా మనుష్యులకు సుఖశాంతులను ఇవ్వగలిగిందా ?

ఒకసారి ఒక వ్యక్తి ఐన్‌స్టీన్ (గొప్ప శాస్త్రవేత్త)ను ఈ విధంగా ప్రశ్నించాడు. "ప్రపంచంలో సుఖశాంతులెందుకు లేవు ? దుఃఖములే ఎందుకున్నవి ? సుఖశాంతులే విధంగా ప్రాప్తిస్తాయి" దానికి అతడు ఈ విధంగా జవాబిచ్చాడు. "ప్రపంచములో జనులు సుఖశాంతులను కోరుకుంటే వారు మంచి మనుష్యులను ఉత్పన్నము చేయాలి". వారు గొప్ప వైజ్ఞానికులైనప్పటికీ వారు చెప్పేదేమిమిటనగా "విజ్ఞానము ద్వారా సుఖశాంతులు లభించుట అసంభవము". ఏ రాజకీయ పార్టీలు గాని లేక సాంప్రదాయిక సమూహాలు కానీ సుఖశాంతులను ప్రపంచములో స్థాపించ లేవు.

ప్రతి వ్యక్తి సహకారాన్ని పొందినప్పుడే సుఖశాంతులను పొందగలుగుతాడు. మానవుడు అల్పజ్ఞుడైనందు వలన అతనికి వేరొకరి సహాయము అవసరమై ఉంటుంది. దాని కొరకు అతడు ఎల్లప్పుడూ వెతుకుతూ ఉంటాడు.

కొందరు దేవీ-దేవతా మూర్తులను, కొందరు ధనవంతులు విగ్రహాలను వెతుకుతారు. ఈ విధంగా ఏదో ఒకదాని యొక్క ఆధారంగా దేనినో ఒక దానిని వెతుకుతూ ఉంటారు. ఇట్లు మనుష్యుడు సహాయాన్ని తీసికొన్నప్పటికీ దుఃఖ సాగరములో మునిగి యున్నాడు. అపూర్ణము-అల్పజ్ఞమునైన వస్తువులపై ఆధారపడిన వాడు ఎల్లప్పుడు దుఃఖితుడై ఉంటాడు. అలాంటప్పుడు సంపూర్ణ జ్ఞాన యుక్తమైన సహాయము కల తత్త్వమేది ? ప్రపంచములో మూడు తత్త్వములు అనాది కాలము నుండి యున్నవి. అందులో రెండు జ్ఞాన తత్త్వములు. ఒకటి జడ తత్త్వము. మొదటి రెండు జ్ఞాన తత్త్వములలో పరమాత్ముడు సంపూర్ణ జ్ఞాన యుక్తుడు. అతడు జ్ఞానము యొక్క భండారము. రెండవది ఆత్మ. అతడు అల్పజ్ఞుడు. ఆత్మలమైన మనము అల్పజ్ఞుల మగుట వలన సంపూర్ణ జ్ఞానవంతుడైన పరమాత్ముని సహాయాన్ని పొందవలసి ఉంటుంది. ఋగ్వేదము ఈ విధంగా చెబుతుంది.

యస్య ఛాయాऽ మృతమ్ (ఋ. 10:12: 92)

పరమాత్ముని నీడయే మనకు అమృతము. పరమాత్ముని జ్ఞానము ఎప్పుడూ సమాప్తము కాదు. దేవీ-దేవతల విగ్రహాలు చాలా రోజుల వరకు ఉండ జాలవు. త్వరగా విరిగి పోతాయి. మన కొఅకు అవి ఏమి చేయగలవు ? అందుకే పరమాత్ముని ఆధారంగా చేసుకో. ఎందుకనగా

విజ్ఞాన మానందం బ్రహ్మ -బృహత్ 3-8-27

బ్రహ్మ విజ్ఞాన స్వరూపుడు. ఎవరు ఆనంద బ్రహ్మను తెలుకు కొంటారో వారిని కష్టాలు, సంతాపములు, దుఃఖములు మొదలైనవి అతనిని భాధించలేవు. అతడు సదా ఆనందామృతాన్ని తాగుతూ ఉంటాడు. మరియు శీఘ్రముగా నష్టము కాని మోక్ష రూప ధనాన్ని పొందుతాడు వేదము ఈ విధంగా వచిస్తుంది-

కస్త్వా సత్యోమదానామ్ మంహిష్ఠోమత్సదంధసః । దృధాచిదా ఋజేవసు ॥

-యజు 365

అర్థము : ఆనందమయులలో అత్యంత పూజ్యుడు, సజ్జనుడు, హితైషి, త్రికాలాబాధితుడు, ఆనందరూప పరమేశ్వరుడు నిన్ను ఆనందముతో యుక్తము చేస్తాడు. జ్ఞానవంతుడైన ఆ పరమేశ్వరుడు దుఃఖితుడైన జీవునకు దధమైన మరియు శీఘ్రముగా నశించని మోక్ష రూప ధనాన్ని ప్రసాదిస్తాడు. కాని మన యొక్క మనస్సు మాయారూపమైన ప్రపంచాన్ని చూసి దానితో తగులుకుని జీవిత చక్రములో తనను తాను బంధించు కొంటుంది. అనగా మనల్ని బంధనములో పడవేస్తుంది. పరమాత్మున్ని ఆధారంగా చేసుకోవటంలో విఘ్నాలను కలిగిస్తుంది. అయితే ఇదే మనస్సు మోక్ష ప్రాప్తిలో మనకు సహాయకమగుతుంది. ఆ విషయము ఈ క్రింది విధముగా చెప్పబడినది.

మన ఏవ మనుష్యాణామ్ కారణమ్ బంధ మోక్షయోః ।

ఈ ప్రపంచములో దట్టమైన అడవులున్నవి. ఎడారులున్నవి. విశాలమై దానములున్నవి. దోపిడీదారులు మరియు హింసక పశువులున్నవి. దుర్మార్గాలు కూడా లోపలకు తోసుకొని వస్తారు. వాటిన్నిటినీ ఎదుర్కొనుటకు మనకు సహాయము అవసరము. దాని పేరు ఓ3మ్ (పరమాత్మ)

ఓ3మ్ ప్రతిష్ఠ । -యజు. 40-15

ఓ3మ్‌ను స్మరించుము. ఉపాసించుము. పరమాత్ముని ఉపాసనచే మనుష్యునిలో శక్తి,

సాహసము ఉత్పన్నమగుతాయి. ఉపాసకుడు ఎవరికీ భయపడడు. అతని మనస్సు శుద్ధము, పవిత్రము అగుతాయి. మనస్సు మన ఆధీనములో ఉంటుంది. చెడు పనులు చేయలేడు. అతనికి ఆంతరిక ఆనందము లభిస్తుంది. చివరకు అతడు స్వచ్ఛమైన మనస్సుతో మోక్షమును పొందుతాడు. ఈ మార్గము తప్ప వేరే కళ్యాణ కరమైన మార్గము లేదు. వేదము ఈ విధంగా వచిస్తుంది.

"నాన్యః పంథా విద్యతే-యనాయ"

-యజు. 31-18

ఉపాసకుడు ఎప్పుడూ గుర్తుంచు కొనవల సినది

తమ్ హదేవమ్ ఆత్మ బుద్ధిమ్ ప్రకాశం ముముక్షుర్వే శరణమహమ్ ప్రపద్యే ।

-శ్వేతా 6-18

ముముక్షువునైన నేను ఆత్మబుద్ధిని ప్రకాశింపజేసే పరమాత్మ శరణును పొందెదను. ఈ కళ్యాణ మార్గములో విఘ్నములు, కష్టములు మొదలైనవి వస్తాయి. వాటితో భయపడ కూడదు. భయముతో ఆ కళ్యాణ మార్గమును విడువ కూడదు. మన కొత్త వస్త్రములు మలినమైనప్పుడు వాటిని సబ్బుతో ఉతికి తెల్లగా చేస్తాము, తిరిగి వాటిని ధరిస్తాము. అదే విధంగా ఉపాసకుని మనస్సు కూడా బహుమూల్యమైన ఒక వస్త్రముతో సమానమైనది. ఈ వస్త్రము ప్రమాద వశమున ఒకప్పుడు ద్వేషము, క్రోధము, లోభము మొదలైన దుర్గుణ రూప మలినముతో పతిత మవుతుంది. అందువల్ల ఉపాసకుడు కష్ట క్లేశములను అనుభవిస్తాడు. ఆ తరువాత నిర్భయుడై ప్రభువు యొక్క భక్తి, ఉపాసనలు అనే సబ్బుతో ఉతికి మనస్సును మెరిసేటట్లు చేయాలి. ఎవరైతే ఈ విధంగా నిర్భయులై కర్తవ్యములను నిర్వహిస్తారో వారు ఉత్తమ పురుషులు అన బడుదురు. అదెట్లనగా-

యుగాంతే ప్రచలతే మేరుః కల్పాంతే సప్త సాగరః । సాధవః ప్రతిపన్నార్థాన్ నచలంతి కదాచన

-చాణక్య నీతి దర్పణము

భావార్థము - యుగము యొక్క అంతములో పర్వతములు కదులుతాయి. సప్త సాగరములు మర్యాదను ఉల్లంఘిస్తాయి. కాని ఉత్తమ పురుషుడు తాను చేసిన ప్రతిజ్ఞ నుండి ఎప్పుడూ విముఖుడు కాదు.

వాటి యొక్క అర్థములను వారికి భోధించాలి. ఏ విధంగా ప్రథమ సముల్లాసము (సత్యార్థ ప్రకాశము)లో పరమేశ్వరుని వ్యాఖ్యానము చేయబడినది. దాని ప్రకారము గ్రహించి పరమేశ్వరుని ఉపాసించ వలెను. ఏ విధంగా ఆరోగ్యము, విద్య మరియు బలము లభిస్తాయో అదే ప్రకారముగా భోజనము, ఛాదనము, వ్యవహారములు చేయవలెను. చేయించ వలెను. అనగా ఎంత ఆకలవుతుందో అంతకంటే కొంచెము తక్కువగా భుజించవలెను. మద, మాంసముల సేవనము నుండి దూరముగా ఉండవలెను. తెలియని, లోతైన జలములో ప్రవేశింప రాదు. ఎందుకనగా జల జంతువులు, ఇతర పదార్థములతో దుఃఖము సంభవించ వచ్చును. ఈదడం తెలియని వారేతై పూర్తిగా మునిగి పోతారు. "నవిజ్ఞాతే జలాశయే". ఇది మనువు యొక్క వచనము. "తెలియని జలాశయములోనికి ప్రవేశించి స్నానాదులు చేయవలదు.

దృష్టి పూతం న్యసేత్పాదం, వస్త్ర పూతం జలమ్ పిబేత్ । సత్యపూతం వదేద్వాచం, మనఃపూతమే సమాచరేత్ ॥-మను. అ. 6/46

అర్థం : నేలపై దృష్టి నుంచి ఎగుడు, దిగుడు ప్రాంతాలను గమనించి నడువవలెను. బట్టతో వడబోసిన నీటిని త్రాగవలెను. సత్యముతో పవిత్రము చేసిన వచనములను చెప్పవలెను. మనస్సుతో ఆలోచించి ఆచరణ చేయవలెను.

మాతాశత్రుః పితావైరీ యేన చాలోనపాఠితః । వశోభతే సభామద్యే హంసమద్యే బకోయథా ॥

-చాణక్య నీతి అధ్యా. 2/శ్లోకము ॥

తమ సంతానికి విద్య ప్రాపింప జేయని వారు వారికి శత్రువులతో సమానము. మాంసల సమూహము మధ్యలో కొంగ తిరస్కరింపబడునట్లు విద్వాంసుల మధ్య వీరు తిరస్కరింపబడి శోభాహీనులై ఉందురు. తమ సంతానములకు తన, మన, ధనములతో విద్య, ధర్మము, సభ్యత మరియు ఉత్తమ శిక్షణ ఇప్పించ వలెను. ఇదియే వారి యొక్క పరమ ధర్మము మరియు కీర్తికారకమైన కార్యము. (సత్యార్థ ప్రకాశము 2వ సముల్లాసము). తండ్రి, తల్లి, అధ్యాపకుడు తమ పిల్లలకు అర్థ సహితముగా గాయత్రీ మంత్రము నుపదేశించ వలెను. ఇది ఆ మంత్రము :-

ఓ౩మ్ భూర్భువః స్వః । తత్స వితుర్వరేణ్యమ్ భర్గో దేవస్య ధీమహి । ధియో యోనః ప్రచోదయాత్ ॥ -యజు. అ.36/మం.3.

ఈ మంత్రములో ప్రథమంగా (ఓ౩మ్) ఉన్నది. దాని అర్థము ప్రథమ సముల్లాసములో చేశాము. అక్కడి నుండే తెలుసు కోగలరు. ఇక మూడు మహావ్యాహృతుల అర్థాన్ని సంక్షేపముగా వ్రాస్తున్నాను. "భూతిరివై ప్రాణః" యఃప్రాణయతి చరాఽచరం జగత్ సభూః స్వయంభూరీశ్వరః" ఎవరు జగత్తున కాధారమో, ప్రాణము కంటే ప్రియుడు మరియు స్వయంభువుడైయున్నాడు. ప్రాణమునకు వాచకమై "భూః" పరమేశ్వరుని నామము. "భువరిత్యపానః" "యః సర్వ దుఃఖ మపానయతి సోఽపానః" ఎవడు సర్వ దుఃఖములచే రహితుడు, ఎవరి సాంగత్యముచే జీవుడు సర్వ దుఃఖముల నుండి ముక్తుడగునో అట్టి పరమేశ్వరుని పేరు "భువః" అయి యున్నది. "స్వరితివ్యానః" యోవివిధం జగద్ వ్యాన యతి వ్యానోతి సన్యానః "ఎవడు నానా విధి జగద్ వ్యాన యతి వ్యానోతి సవ్యానః" ఎవడు నానా విధ జగత్తులో వ్యాపకుడై అందరిని ధరిస్తాడో ఆ పరమేశ్వరుని నామము "స్వః" అయి యున్నది. ఈ మూడు వచనాలు తైత్తిరీయ ఆరణ్యకము ప్రపా. అను 5 లోనివి. (సవితుః) "యః సునోత్యుద్ పాదయతి సర్వజగత్ స సవితా తస్య" ఎవడు జగదుత్పాదకుడో అతడే సర్వ ఐశ్వర్యముల దాత. (దేవస్య) "యోదీవ్యతి దీవ్య తేవా సదేవాః" ఎవడు సర్వసుఖముల ప్రదాత ఇంకా ఎవని ప్రాప్తి కొఱకు అందరు కోరుకుంటారో ఆ పరమాత్ముని యొక్క ఏదైతే (వరేణ్యమ్) 'వర్తుమర్హమ్" స్వీకరింప దగిన వాడు. అతిశ్రేష్ఠుడు (భర్గః) "శుద్ధం స్వరూపమే" శుద్ధ స్వరూపుడు, పవిత్రము చేయువాడు, చేతన బ్రహ్మ స్వరూపుడు అయి యున్నాడు. (తత్) ఆ పరమాత్ముని స్వరూపమునే మనము (ధీమహి) "ధరేమహి" ధరాతుము గాక. ఏ ప్రయోజనము కొరకు (యః) "జగదీశ్వరః" ఏ సవితా దేవ పరమాత్ముడు (నః) "అస్మాకం" మా యొక్క (ధియః) బుద్ధి, బుద్ధులను (ప్రచోదయాత్) "ప్రేరయేత్" ప్రేరేపించుగాక, అనగా దుష్ట కార్యముల నుండి విడుదల చేసి మంచి కార్యములను చేయుటకు ప్రేరేపించుగాక ! (సత్యార్థ ప్రకాశము 3వ సముల్లాసము)

...पृ.३ का शेष

गुरुकुल कांगडी

विचार ही सहसा परिवर्तित हो गए। ऋषि की पुरानी माया का जादू प्रेम के प्रभाव से ताजा हो गया। रुग्णावस्था में उनकी सेवा कर इन्होंने अपना प्रभाव बैठा दिया। पैतृक सम्पत्ति से इनकी उपेक्षा और फिर यह प्रश्न कि क्या आप अपनी सन्तान से मक्कारी कराएंगे ? मुन्शीराम के ये दो शस्त्र अमोघ सिद्ध हुए। इन्हीं दिनों पं. गुरुद्द से साक्षात् परिचय हुआ। यह सम्बन्ध उत्तरोत्तर घनिष्ठ होता गया। यहां तक कि मुन्शीराम जी पण्डित जी के अन्तरंग अनुरक्तों में हो गए। आर्य समाज में दोनों सदाचार की प्रधानता चाहते थे। पहले तो पण्डित जी को इन पर सन्देह था कि ये ब्रह्म समाज के प्रभाव में है परन्तु साक्षात् बातचीत से यह भ्रम दूर हो गया। किसी को क्या पता था कि गुरुदत्त की प्रवृत्तियों को क्रियात्मक रूप देने का भार आगे जाकर जालन्धर की इस 'नई-शक्ति' पर ही पड़ेगा। ला. साईंदास की भविष्यवाणी गुरुदत्त की भावना की स्थिरता के सपनों से मानो सच्ची सिद्ध हो रही थी।

१८८९ में स्वामी रामानन्द और स्वामी पूर्णानन्द जालन्धर आए। स्वामी रामानन्द ने उपदेशक श्रेणी खोलने का विचार प्रकट किया। मुन्शीराम सहमत हो गए। नियमित श्रेणी तो नहीं खुली परन्तु ये स्वयं जिज्ञासुओं को शिक्षा देने लग गए। स्वामी पूर्णानन्द की दर्शनों की शिक्षा का प्रबन्ध कपूरथला के एक पण्डित जी के पास हो गया। स्वामी (पश्चात् पण्डित जी) जी को साथ लेकर ला. मुन्शीराम जी स्थान-स्थान पर आर्य समाज का प्रचार करने लगे। लाला जी की प्रधानता में एक उप प्रतिनिधि सबा की भी स्थापना हो गई। इस सबा का काम दोआबा में प्रचार करना था।

जालन्धर के प्रत्येक कार्य में मुन्शीराम अग्रसर रहते थे। कन्या पाठशाला का प्रबन्ध, कन्या अनाथालय का प्रबन्ध, रहतियों की शुद्धि, नगर प्रचार, जिज्ञासुओं की शिक्षादान, जालन्धर से बाहर जा-जाकर उपदेश करना ये सब कार्य ला. मुन्शीराम के भावी चौमुखे जीवन की मानो भूमिका रूप में थे।

१ वैशाख, १९४६ (सन् १८८९) को 'सद्धर्म प्रचारक' पत्र निकलना आरम्भ हुआ। ला. मुन्शीराम जी के हाथ में यह मानो कृष्ण का सुदर्शन चक्र आ गया था। इसके प्रभावों ने समाज को कई ऊंच-नीच दिखाए। पहले यह आठ पृष्ठ का था फिर १६ का और फिर २० पृष्ठ का हो गया। पं. लेखराम की स्मृति में इसमें चार पृष्ठ और बढ़ाए गए। इस परिशिष्ट का नाम ''आर्य मुसाफिर'' रखा गया। १ मार्च १९०७ को प्रचारक को उर्दू से हिन्दी कर दिया गया। उर्दू अक्षरों में भी प्रचारक की भाषा धीरे-धीरे हिन्दी होती गई थी। ला. मुन्शीराम के प्रभाव को बढ़ाने तता पैलाने में 'प्रचारक' ने सबसे प्रबल साधन का काम किया। उसने सम्पूर्ण समाज में एक 'प्रचार-परिवार' स्थापित कर दिया जिसमें केन्द्रीय स्थान ला. मुन्शीराम का था। कन्या महाविद्यालय के लिए प्रचारक द्वारा प्रबल आन्दोलन हुआ और जब प्रतिनिधि सभा की बागडोर ही लाला जी के हाथ में आ गई तब तो प्रचारक एक प्रकार से सभा ही का पत्र बन गया। सबा की नीति का निर्धारण तथा प्रचार इसी के द्वारा होता था।

३१ अगस्त १८९१ को लाला मुन्शीराम की धर्मपत्नी श्रमती शिवदेवी का देहान्त हो गया। देहान्त का सम्पूर्ण दृश्य उस पति-परायणा आर्य महिला के पूर्व चरित्र के सर्वथा अनुरूप था। ला. मुन्शीराम उस दिन से अपनी सन्तान के तो एक साथ माता-पिता ही हो गए। इसके पश्चात् का उनका सम्पूर्ण जीवन इस मातृत्व के विस्तार की साधना-सा प्रतीत होता है। लाला जी की आयु इस समय ३५ वर्ष की थी। पुनर्विवाह के कई प्रस्ताव आए, पर सब व्यर्थ। इनके हृदय में जो प्रेम पहले अर्धांगिणी के लिए था, वह अब आर्य जगत् के लिए हो गया। महात्मा मुन्शीराम द्वारा किए गए ब्रह्मचर्य के प्रचार में सती शिवदेवी का बड़ा भाग है। सती के समर्पित जीवन तता समर्पित मृत्यु ने मुन्शीराम को केवल ब्रह्मचारी ही नहीं, किन्तु ब्रह्मचर्य की मर्यादा का पुनरुद्धारक बना दिया।

पत्नी ने अपनी आहुति पति के पवित्र चरणों में दे दी और पति ने झट अपने आपको धर्म की आग से स्वाहा कर दिया। यह आहुति पति की थी या पत्नी की। १८९२ से १८९५ तक ये निरन्तर प्रतिनिधि सभा के प्रधान निर्वाचित होते रहे। इन्हीं की प्रधानता में वेद-प्रचार निधि की स्थापना हुई। वकालत के काम से जब भी इन्हें छुट्टी होती, ये प्रचार के कार्य में लग जाते। इस निमित्त से की गई यात्रा को धर्म-यात्रा कहते थे। ग्रीष्मावकाश तथा मुहर्रम की छुट्टियां इन धर्म-यात्राओं के समर्पण होती।

''लाला मुन्शीराम की सबसे लम्बी धर्म-यात्रा गुरुकुल के लिए भिक्षा मण्डली के नेता के रूप में की गई थी। उसके फलस्वरूप ३०,००० से अधिक एकत्रित होकर गुरुकुल की स्थापना हुई। ८ अप्रैल १९०० को लाहौर आर्य समाज ने इनका जुलूस निकाला तथा अभिनन्दन पत्र पेश कर इन्हें 'महात्मा' पद से विभूषित किया। तब से ये लाला मुन्शीराम के स्थान में महात्मा मुन्शीराम कहलाने लगे और धर्मात्मा समाज का नाम भी महात्मा समाज हो गया।''

-इन्द्र विद्यावाचस्पति की लेखनी से

Date of Publication 2nd and 17th of every Month, Date of Posting 3rd and 18th of every Month
आर्य जीवन 18-07-2024 REGISTERED-REGD. No. D/RNP/HCD-783/2024-26 RNI No. 52990/93

ఆర్య జీవన్

హిందీ-తెలుగు ద్విభాషా పక్ష పత్రిక

Editor : Sri Vithal Rao Arya, M.Sc., L.L.B., Sahityaratna.
Arya Pratinidhi Sabha A.P.-Telangana, Sultan Bazar, Hyderabad-500095.
Phone : 040-24753827, 24756983, Narendra Bhavan : 040-24760030.
Annual Subscription Rs. 250/- సంపాదకులు : విఠల్ రావు ఆర్య, ప్రధాన సభ

To,

आर्य समाज राष्ट्रपति रोड़ सिकन्द्राबाद के अधिकारियों ने अपने विद्यालय के विद्यार्थियों के बीच सभा प्रधान प्रो. विट्ठलराव आर्य का जन्मदिन मनाया। विद्यार्थियों को भोजन परोसते हुए प्रधान जी

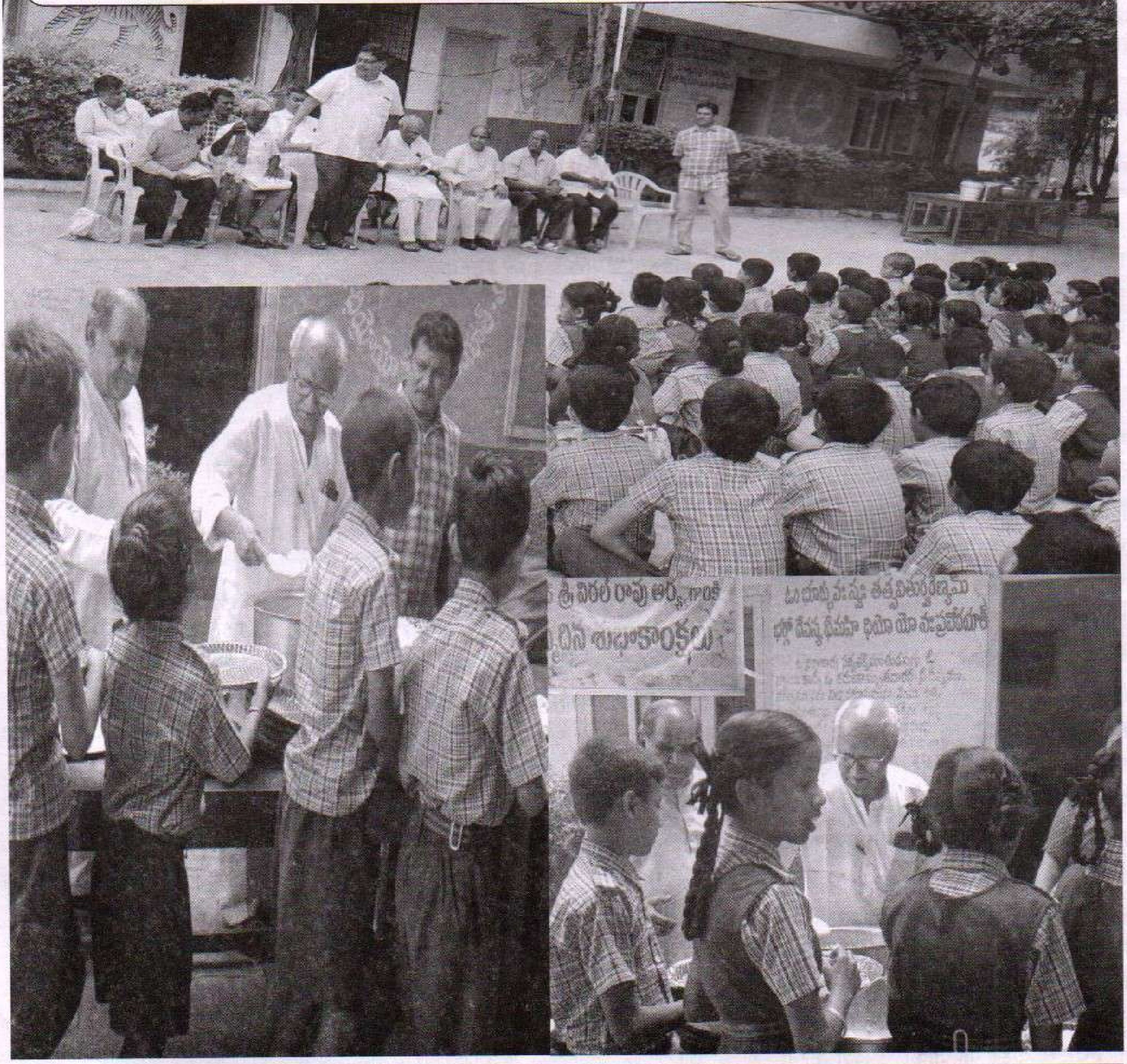

THE VIEWS & THE NEWS PUBLISHED IN THIS ISSUE MAY NOT NECESSARILY BE AGREEABLE TO THE EDITOR.

Editor : Sri Vithal Rao Arya E-mail : acharyavithal@gmail.com, Mobile : 09849560691.

సంపాదకులు : శ్రీ విఠల్ రావు ఆర్య, ప్రధాన సభ, ఆర్య ప్రతినిధి సభ ఆ.ప్ర.-తెలంగాణ, సుల్తాన్ బజార్, హైదరాబాద్-95. Ph : 040-24753827, Email : acharyavithal@gmail.com

संपादक : श्री विट्ठल राव आर्य, प्रधान सभा ने सभा की ओर से आकृति प्रिन्टर्स, चिक्कड़पल्ली में मुद्रित करवा कर प्रकाशित किया।

प्रकाशक : आर्य प्रतिनिधि सभा, आं.प्र.- तेलंगाना, सुल्तान बाज़ार, हैदराबाद-500 095. Narendra Bhavan Ph : 040 24760030.